
चन्दामामा
मा-बच्चों का मासिक पत्र



उन दिनों ब्रह्मदत्त काशी का राजा था। बोधिसत्व, कृष्णद्वैपायन नाम के रईस ब्राह्मण के रूप में कोशाम्बी नगर में पैदा हुए। वे सांसारिक बाधाओं का परिणाम जानते थे; इसलिये उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दान-दक्षिणा में दे दी। फिर उसके बाद सन्यास लेकर, वे पचास वर्ष तक हिमालय में घूमते-फिरते रहे। वहाँ कन्दमूल खाकर उन्होंने तपस्या की, पर इतना होने पर भी तपस्या के कारण उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। उलटे शरीर के सारे अङ्ग शिथिल पड़ गये।

हिमालय को छोड़कर, तीर्थ-यात्रा करते करते कृष्णद्वैपायन काशी राज्य पधारे। उन्हें एक जगह छुटपन का साथी, माण्डव्य एक ग्राम में दिखाई दिया और उसने उनका बड़ा आतिथ्य किया। माण्डव्य ने उन्हें अपने घर में रहने के लिए बड़ा आग्रह किया। कृष्णद्वैपायन ने वहाँ रहने को मान लिया। उनके लिए उसने एक झोंपड़ी बनवाई और उनकी जरूरतों को पूरा करता आया।

एक दिन, माण्डव्य का लड़का, यज्ञदत जब गेन्द से खेल रहा था तो वह गेन्द अचानक एक बाम्बी में जा घुसी। गेन्द लेने के लिए यज्ञदत्त ने बाम्बी में हाथ रखा। उस बाम्बी में साँप था। तुरत उसके हाथ पर साँप ने काटा। साँप का विष शरीर में चढ़ने लगा, और यज्ञदत्त देखते देखते बेहोश होकर जमीन पर गिर गया।

जब उनका लड़का इस हालत में था तब माण्डव्य और उसकी पत्नी ने उसको देखा। वे कुछ नहीं कर सके। माण्डव्य

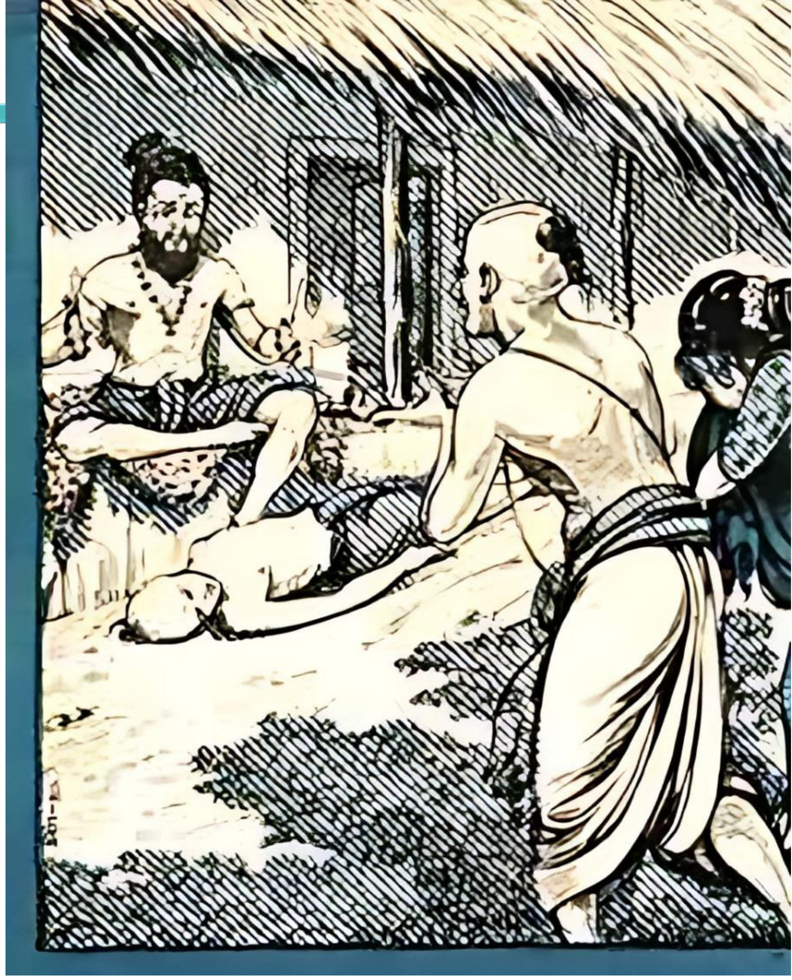
उसको अपने हाथों पर उठाकर पत्नी के साथ कृष्णद्वैपायन के पास पहुँचा। वे बहुत दुःखी हुए और लड़के को उनके पैरों के पास रख दिया।

"महात्मा! बड़ा अनर्थ हो गया है। आप अपनी तपस्या के फल से मेरे इस लड़के को जीवित कर हमें उपकृत कीजिये।" यज्ञदत्त के माँ-बाप गिड़गिड़ाये।

कृष्णद्वैपायन को कुछ न सूझा। "आप गलती कर रहे हैं। मेरे पास कोई शक्ति या सिद्धि नहीं है। मैंने बहुत दिन तक तपस्या तो ज़रूर की, पर उस तपस्या का कोई फल मुझे न मिला। आखिर मैं मूल-बूटी की औषधियाँ भी नहीं जानता। इस दशा में मैं आप लोगों की कैसे सहायता कर सकता हूँ?" उन्होंने उनसे कहा।

"तपस्या भले ही सफल न हुई हो, पर इतने दिन की तपस्या व्यर्थ नहीं जायेगी। आप सत्य की शपथ कीजिये। लड़का जरूर जी उठेगा।" माण्डव्य ने कहा।

कृष्णद्वैपायन इसके लिए मान गये और उन्होंने यह निम्न श्लोक सत्य की शपथ लेकर धीमे धीमे पढ़ा:



सत्ताहं ऐवाहं प्रसन्नचित्तो

पुंस्यस्तिको अचरि ब्रह्मवरियं

अथापरं यं चरित भ्रमयिद

वस्यानि पञ्चास समाधिकानि

अकामको वाहि अहं चरामि

एतेन सचेन सुवस्थि होतु

बिसं जीवतु यज्ञदतो।

[मैंने पुण्य के लिए, निर्मल चित्त हो एक सप्ताह तक ब्रह्मचर्य का पालन किया है। उसके बाद मैंने पचास साल तक जो तपस्या की, वह शुद्ध चित्त से नहीं की। इस सत्य के शपथ के फलस्वरूप मैं चाहता



हूँ कि यज्ञदत्त का विष कम हो और वह पुनः जीवित हो।]

तुरन्त लड़के की छाती से थोड़ा विष बाहर निकला और फर्श पर गिरकर अन्दर समा गया। उसने आँखें खोलीं और माँ-बाप की ओर देखते हुए कहा-"माँ" फिर उसके बाद उसने करवट बदली और देखते देखते वह बेहोश होकर गिर गया।

"देख लिया न? मैं सत्य के शपथ से पूरा विष बाहर न कर सका। तुम भी सत्य का शपथ करके देखो। हो सकता है कि कुछ असर हो।" कृष्णद्वैपायन ने माण्डव्य से कहा।

माण्डव्य कृष्णद्वैपायन की बात मान गया। और उसने इस प्रकार सत्य की शपथ ली :

"यस्मादाने न अभिनन्दिं कदाचि

दिरवानाहं अतिथिं वा सकले

न चापिमें अप्पियं अवेदुं

बहुस्मुता समणा ब्राह्मणाच

अकामको वा हि अहं ददामि

एतेन सचेन सुबत्वि होतु

हतं विसं जीवतु यज्ञदत्तो।

["मैंने अतिथियों का सत्कार किया है; पर इच्छापूर्वक नहीं। ज्ञानी श्रमण भी यह न जान सके कि मैंने उनका आतिथ्य इच्छापूर्वक नहीं किया है। मैंने दान भी अनिच्छा पूर्वक ही दिया। इस मेरे सत्य की शपथ से उपकार हो। विष चला जाये और यज्ञदत्त पुनः जीवित हो उठे।]

माण्डव्य के इस प्रकार सत्य की शपथ करने से यज्ञदत्त की छाती में से थोड़ा और विष निकला और फर्श में चला गया। लड़का उठकर तो बैठ गया। पर खड़ा न हो सका।

तब माण्डव्य ने झट अपनी पत्नी की ओर मुड़कर कहा-"तुम भी

क्यों नहीं सत्य की शपथ लेती? अगर तुम भी वैसा करोगी तो लड़का स्वस्थ हो, उठकर चलने-फिरने लगेगा।"

"मुझे भी सत्य कहना है? पर मैं वह आपके सामने नहीं कह सकती।" माण्डव्य की पत्नी ने कहा।

"पगली! तुम क्यों आनाकानी करती हो? आख़िर अपने लड़के को तो देखो। हमारे लिए लड़के से बढ़कर क्या है? सत्य का प्रमाण करो।" माण्डव्य ने आपनी पत्नी को प्रोत्साहित किया। वह मान गई और उसने यह निम्न लोक पढ़ा:

असो विसो तात पहूत तेजो

ये सं अदट्ठी पतरा इदशि

तस्मिं च मे अप्यिय ताय अज

पितरि च मे नत्यि कोचि विसेस

एतेन खचन सुवत्थि होतु

हतं विसं जीवतु दत्तो।

[बेटा! आज जिस बाम्बी में तूने हाथ डाला है, उसमें रहनेवाले साँप को देखकर मुझे जितनी घृणा हुई, उतनी घृणा तुम्हारे पिता को देखकर भी होती है। इन दोनों में मेरे लिए कोई भेद नहीं है। मेरा इस सत्य प्रमाण से तेरा उपकार हो। विष



चला जाये और यज्ञदत्त पुनः जीवित हो उठे।]

इस सत्य की शपथ से यज्ञदत्त के शरीर से पूरा विष बाहर आगया और वह पहले की तरह उछलने-कूदने लगा। माण्डव्य ने कृष्णद्वैपायन की ओर मुड़कर कहा-"स्वामी! आपने उत्तम तपस्या का अवलम्बन किया। परन्तु आपने यह अपनी इच्छा के विरुद्ध क्यों किया?"

कृष्णद्वैपायन ने कहा-"इसका एक ही कारण है। एक बार सन्यास लेकर अगर कोई चला जाता है, यदि वह फिर गृहस्थ होना चाहें तो सब उसकी निन्दा करते हैं, उससे घृणा करते हैं। यद्यपि

यह जीवन मुझे पसन्द न था, तो भी मैं अपने गौरव के लिए वह जीवन निभाता रहा। तुम अतिथि अभ्यागतों का इतना सम्मान सत्कार करते हो, वह बिना इच्छा के क्यों करते हो?"

"मेरे बाप-दादा, प्रसिद्ध दानी थे। इसलिए मुझे भी उनकी परम्परा का पालन करना पड़ा। कहीं लोग यह न कहने लगे कि मैंने उनके यश पर कलङ्क लगाया है, मैं दान-दक्षिणा करता जाता हूँ। मुझे दान-दक्षिणा करने की बिल्कुल इच्छा नहीं है।" यह जवाब देकर, उसने पत्नी की ओर मुड़कर कहा-"छुटपन में ही तुम मेरी पत्नी बनकर मेरे घर आयी। इतने साल मेरे साथ रही। जब मुझ पर तुम्हें प्रेम नहीं, तो न मालूम तुम इस जीवन से कितने ऊब गयी होगी। क्यों तुम यह सब अब तक सहती रही?"

माण्डव्य की पत्नी ने कहा-"क्योंकि हमारे वंश में स्त्री के लिए पति के साथ गृहस्थ धर्म निभाना कर्तव्य है, इसलिए ही में यह जीवन सहती रही। अगर आप को छोड़कर मैं किसी और से शादी करती तो सारा संसार मुझे कुलटा कहता। अपने पुत्र के हित को ध्यान में रखते हुए मैंने यह बात किसी से नहीं कही।"

"सच कहा है। इसलिए मैं तुझे दोष नहीं देता। में तो यह भी शपथ करूँगा आइन्दा मैं तुम्हें प्रेम से देखूँगा।" माण्डव्य ने अपनी पत्नी से कहा।

"अगर तू दान-दक्षिणा करना चाहता है तो इच्छा पूर्वक ही कर, बिना इच्छा के न कर। मैं भी अपनी तपस्या अब शुद्ध चित्त से ही करूँगा।" कहकर कृष्णद्वैपायन, माण्डव्य से विदा लेकर अपने रास्ते पर चले गये।





[५]

[पद्मपाद ने पिङ्गल को भल्लूककेतु की बातों में न पड़ने दिया। दोनों मिलकर भल्लूक पर्वत की ओर निकले। रास्ते में उन्हें भूत वगैरह से मुकाबला करना पड़ा। मगर के रूप में महामायावी के शिष्य पद्मपाद की सहायता करना मान गये। मगर अदृश्य हो गये।]

महामायाबी के शिष्यों के अदृश्य होते ही, पिङ्गल ने आश्चर्य से पद्मपाद की ओर देखकर कहा- "पद्मपाद! कहीं वे दोनों मगर के रूप में फिर नदी में तो नहीं चले गये हैं?"

"मगर के रूप में?" पद्मपाद हड़बड़ाया। फिर सम्भलकर, हँसते हुए उसने कहा-"अगर वे सचमुच फिर मगर बन जायें तो कहानी फिर शुरू से चलेगी। तुम जानते ही हो कि उन्हें पकड़ने के लिए मेरे दोनों भाई अपनी जान खो बैठे थे !.... मैं भी उनके चंगुल से मुश्किल से जीते जी निकल सका।"

"फिर वे गये कहाँ हैं?" पिङ्गल ने पूछा।

"यह कोई ख़ास बात नहीं हैं कि वे कहाँ और किस रूप में गये हैं! हमें इस नदी में स्थित देवालय में प्रवेश करना है।



उस देवालय के, जब तक पाँचों दरवाजे न खुले हुए हो, तब तक हम महामायावी के समाधि वाले कमरे में नहीं पहुँच सकते। वे इस काम में हमारी मदद करेंगे।" पद्मपाद ने कहा।

"मैं अच्छी तरह तैरना नहीं जानता। मैं इस नदी में स्थित देवालय तक कैसे पहुँच सकूँगा?" पिङ्गल ने पूछा।

पिङ्गल के इस नादान प्रश्न को सुनकर, पद्मपाद ने हँसकर कहा- "पिङ्गल! भले ही तुम्हें तैरना न आये कोई बात नहीं; पर यह काफी है कि तुम में हिम्मत हो। हमें यह देखना है कि इस नदी में एक बूँद पानी भी न हो। आओ हम इस काम में लगें। इस काम में महामायावी के शिष्य हमारी मदद करेंगे।"

"इतनी बड़ी नदी को वे कैसे सुखा सकते हैं?" पिङ्गल ने अपना आश्चर्य व्यक्त किया।

ऐसा करने पर ही हमारा काम पूरा हो सकेगा। मैं अभी मन्त्र जपने की तैयारी करता हूँ। यह तुम्हारी जिम्मेवारी है कि महामायावी के आधीन शक्तियाँ, उस मन्त्र को विफल न कर दें। यानि, तुम्हें ही मेरी रक्षा करनी होगी।"

"मुझे तुम्हारी रक्षा करनी होगी?" पिङ्गल ने घबराते हुए पूछा।

"हाँ.... तुम्हें ही मेरी रक्षा करनी होगी। जब मन्त्र के ध्यान में होऊँगा, तब मुझे ही नहीं मालूम होगा कि मेरे चारों ओर क्या हो रहा है। इसलिए हथियार लेकर, तुम्हें ही मेरी रक्षा करनी होगी। यह लो हथियार।" कहते हुए पद्मपाद ने हाथ पसारे.... आँखों को चकाचौन्ध करनेवाली एक गदा को लेकर, उसने पिङ्गल को दिया। पिङ्गल ने पद्मपाद से गदा लेकर उसे

घुमा-फिराकर, अपने कन्धे पर रख लिया। पद्मपाद ने स्नेह से उसकी ओर देखा-"अच्छा तो पिङ्गल! मैं अब समाधिस्थ हो कर, मन्त्रोच्चारण कर सकता हूँ। तरह तरह के रूप धारण कर, महामायावी के भूतों से अपने को और मुझे बचाने का काम अब तुम्हारा रहा।

जल्दी ही मैं नदी के जल को रोककर सुखा दूँगा।" पद्मपाद ने कहा।

"अच्छा, यही सही। मैं इस गदा की सहायता से बड़े बड़े भूतों को भी दूर खदेड़ दूँगा।" पिङ्गल ने कहा।

पद्मपाद नदी के किनारे पद्मासन लगाकर बैठ गया और नदी के पानी को हाथ में लेकर कहने लगा-"जल, सर्वस्तम्भनं.... कुरु, कुरु शीघ्रं वश्यं....ठः ठः " कहते कहते उसने आँखें बन्द कर ली।

पद्मपाद ने आँखें बन्द ही की थीं कि आकाश से भयङ्कर चीत्कार की ध्वनि सुनाई

देने लगी। पिङ्गल घबरा गया। फिर हिम्मत बाँध कर, कन्धे पर से गदा हाथ में लेकर वह आकाश की ओर देखने लगा।



क्षण भर में आकाश में घने बादल छा गये। देखते देखते बादल हाथी के रूप में संकुचित हो गये। "ओहो....तुम वही जादू के हाथी हो, जिसने थोड़ी देर पहले मेरा सामना किया था! अब फिर आये हो।" कहकर पिङ्गल ने गदा को जोर से पकड़ लिया। परन्तु वह बादल हाथी से तुरन्त पक्षी बन गया और पंख फड़फड़ाने लगा।

"यह सचमुच कोई विशाल भूत पक्षी है।" पिङ्गल ने सोचा।

वह पक्षी भयङ्कर चीत्कार कर, पंख फड़फड़ाता ठीक उसी जगह पर उतरने लगा, जहाँ पिङ्गल खड़ा था। उसके



पंखों के फड़फड़ाने से, उस जगह के पेड़ पौधे इस तरह हिलने लगे, जैसे कोई तूफ़ान चल रहा हो।

पिङ्गल न हिला। वह जानता था कि वह पक्षी उसको मुर्गी के बच्चे की तरह मारने के लिये चला आ रहा था। फिर भी उसके हाथ में जादू की गदा थी।

पिङ्गल ने दोनों हाथों में गदा लेकर ऊपर उठाई। वह विशाल पक्षी उसके समीप आ रहा था। उसकी लम्बी नाक, तेज़ पैरों के नाखून, अङ्गारे सी आँखें, बड़े भयङ्कर और भद्दे थे। वह ज्यों ज्यों पास आने लगा, त्यों त्यों हवा तेज़ चलने लगी।

हवा के जोर में पिङ्गल अपनी जगह न खड़ा रह सका। वह कुछ दूर धकेल दिया गया। उसी समय उस भूत पक्षी ने उसके सिर पर अपनी नाक रखी। पिङ्गल ने गदा चलाई। परन्तु पक्षी चोट से बच गया और चिल्लाता चिल्लाता ऊपर उड़ गया।

"जान बची।" यह सोचते हुए पिङ्गल ने ऊपर देखा। भूत आकाश में बहुत दूर चला गया था और तेज़ी से नीचे की ओर आ रहा था। पिङ्गल भूमि पर पैर जमाकर, गदा ऊपर उठा कर खड़ा था। ज्यों ही पक्षी उसके सिर पर मँडराया, त्यों ही उसने गदा उसके सिर पर मारी। तुरत ऐसा शब्द हुआ, जैसे कोई पहाड़ फूट पड़ा हो। विशाल पक्षी के अङ्ग अङ्ग अलग हो गये। सिर एक तरफ, पंख एक तरफ वह उड़ा आकाश में और भूमि पर गिर गया।

पिङ्गल वह दृश्य देखकर फूला न समाया। "जय पद्मपाद" कहता कहता गदा जल्दी जल्दी घुमाने लगा। फिर उसने ध्यानस्थ पद्मपाद को देखा। पद्मपाद हिल-डुल नहीं रहा था। उसकी आँखें बन्द

थीं। होंठ ज़रूर कभी कभी हिलते थे। "इनका ध्यान नहीं बिगड़ा। यही काफ़ी है।" सोचकर पिङ्गल पीछे मुड़ा था कि पिङ्गल को झन झन घुंघरूओं का शब्द सुनाई दिया।

पिङ्गल हैरान हो गया। सामने सर्वाभरण से सुशोभित अप्सरा-सी एक युवती नाचती गा रही थी। उसका सौन्दर्य, सङ्गीत, नृत्य देखकर, पिङ्गल एक क्षण अपने को भूल बैठा।

"पिङ्गल! मैं तुम्हारा सौन्दर्य देखकर यहाँ आयी हूँ। मुझ से विवाह करो। मैं तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुख-सम्पदा, इकट्ठी करके दूँगी।" उस युवती ने कहा।

पिङ्गल यह सुनकर, अपने को सम्भालते हुए बोला-"तुम मेरा सौन्दर्य देखकर यहाँ आयी हो? तुम शायद मुझे कोई राजकुमार समझ रही हो! वह गलती न करो। मैं मछियारा हूँ।" उसने कहा।

"मछियारे हो तो क्या? तुम जैसा सुन्दर चारों लोकों में कोई नहीं है।" कहती वह युवती नाचने लगी।

पिङ्गल ने उसकी ओर सन्देह करते हुए पूछा-"तुम्हारी आवाज़ के साथ



और भी कई बाद्यों की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। वे बाद्य मुझे क्यों नहीं दिखाई देते?"

"जब तक तुम मुझ से विवाह न करोगे, तबतक तुम्हें वे न दिखाई देंगे। मैं खेचरी हूँ।" उस युवती ने कहा।

"तुम खेचरी हो! यानि आकाश में विचरने वाली गन्धर्व कन्या हो।" कहता कहता, गदा लेकर पिङ्गल उसके पास गया।

"पिङ्गल! उस गदा को दूर फेंक दो। मुझे आयुधों से डर है।" कहती खेचरी जल्दी जल्दी पीछे हटी।



पिङ्गल जान गया कि वह युवती कौन थी। वह कोई भूत थी, जो उसे उड़ा ले जाने के लिए आई थी। क्योंकि वह पद्मपाद की रक्षा कर रहा था ताकि उसका ध्यान भङ्ग न हो, उसने अपने क्रोध को दबाकर और सन्तोष का अभिनय करते हुए कहा-"हे गन्धर्व कन्या! मुझे तुमसे विवाह करने के लिए कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मुझे इस समय यह अफ़सोस है कि मेरे परदादे की तीसरी पत्नी यहाँ नहीं है। उन्होंने ही मुझे पाला-पोसा है। खैर, कोई बात नहीं। हमारी वंश-परम्परा के अनुसार विवाह के पहले इस गदा से सिर पर एक बार मारने दो।" वह आगे बढ़ा।

खेचरी चिल्लाती और पीछे भाग गई। इस बीच गदा से पिङ्गल ने उसके सिर पर चोट मारी। तुरन्त स्त्री रूप में आया हुआ भूत टुकड़े टुकड़े हो गया, और हवा में उड़ गया।

पिङ्गल ने अट्टहास किया। वह पीछे मुड़ कर पद्मपाद के पास आया। पद्मपाद अब भी आँख मूँदे बैठा था। पिङ्गल की नज़र नदी की ओर गई।



उसके आश्चर्य की सीमा न रही। नदी का पानी सुखा जा रहा था। नदी के पानी में रहनेवाले जलचरों के झुण्ड के झुण्ड, इधर-उधर कूद-फाँद रहे थे।

'पिङ्गल' पुकारते हुए पद्मपाद ने आँखें खोली। पिङ्गल एक छलाङ्ग में पद्मपाद के पास गया। 'पद्मपाद। नदी की तरफ देखिये।" उसने आश्चर्य से कहा।

पद्मपाद ने नदी की ओर देखकर कहा-"वाह, महामायावी के शिष्यों ने अपने वचन का पालन किया। मगर वह उजड़ा हुआ देवालय कहाँ है?"

पिङ्गल ने नदी की और गौर से देखते हुए कहा-"वह देखो! अभी अभी मन्दिर का शिखर पानी से ऊपर निकल रहा है। क्या वही देवालय है, जिसमें महामायावी की समाधि है?"

पद्मपाद भी उसी ओर देखने लगा, जिस और पिङ्गल देख रहा था। उसने सन्तोष से हँसकर कहा-"वह ही उजड़ा हुआ देवालय है। जब नदी में एक बून्द भी पानी न होगा, महामायावी के दोनों शिष्य हमारे पास आ जायेंगे। जब में ध्यान में था, मेरा ध्यान भङ्ग करने के लिए पिशाच भूत बगैरह तो नहीं आये थे?"

पिङ्गल ने खुशी खुशी, उस विशाल पक्षी, और खेचरी के बारे में कहा, जिनको उसने मार दिया था। सब सुनकर, पद्मपाद ने पिङ्गल का कन्धा थपथपाते हुए कहा-"पिङ्गल! मुझे इस बात का बहुत सन्तोष है कि गन्धर्व कन्या के रूप में आये हुए भूत के चंगुल में तुम न पड़े। जब तुम उजड़े हुए देवालय में घुस रहे होगे, तब भी दो चार इस प्रकार की परीक्षाओं का सामना करना पड़ेगा। होशियार रहना।"

इस बीच नदी में से आवाज आई "महामान्त्रिक!" पद्मपाद और पिङ्गल ने उस ओर देखा। नदी में एक बून्द भी पानी न था। ताड़ के समान ऊँची, एक पत्थर की दीवार और उसमें छुपा हुआ एक दरवाज़ा और दीवार के पीछे स्पष्ट और अस्पष्ट रूप से दीखता एक उजड़ा देवालय, उन्हें दिखाई दिया। दीवार के पास ही महामायावी के दोनों शिष्य खड़े थे। वे पद्मपाद की ओर देख रहे थे।

(अभी और है)



भूतों का टीला



विक्रमार्क ने अपनी ज़िद न छोड़ी, पेड़ पर से शव उतारा। उसे कन्धे पर डालकर, वह श्मशान की ओर चल पड़ा।

तब शव में स्थित बेताल ने कहा- "राजा! तुम्हें देखकर मुझे धीरभानु नाम का एक बहादुर याद आ रहा है। उसे भी तुम्हारी तरह अकेले भूतों से लोहा लेना पड़ा। ताकि तुम्हें आराम मिल सके मैं उसकी कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यो कहानी सुनाई:

एक गाँव में एक किसान रहा करता था। गाँव के आसपास उसकी बड़ी सारी जमीन थी। क्योंकि वह निस्सन्तान ही मर गया था, इसलिए उसके बन्धुओं ने उस भूमि को आपस में बाँट लिया। उस किसान की जमीन में एक ऐसा भी खेत था, जहाँ खेती न करने के कारण



झाड़-झंखाड़ उग आया था। सब उसको 'भूतोंवाला टीला' कहा करते थे। किसान ने वह भूमि कई को खेती के लिए दी, पर कोई भी उसमें कुछ न पैदा कर सका। अगर कोई उस खेत में हल चलाने का साहस भी करता तो बैल रस्सी तोड़कर जुए में से भाग जाते। बिदक उठते। सब का यह विश्वास था कि वहाँ भूत थे और वे किसी को खेती न करने देते थे। कई साल तक खेती न हुई थी। इसलिए कई तरह की काँटों की झाड़ियाँ यहाँ उग आई।

वह भूतोंवाला टीला सबने लेने से इनकार कर दिया। मृत किसान के दूर के सम्बन्धियों में गौरी नाम की एक लड़की थी। उस लड़की की अभी शादी न हुई थी। माँ-बाप भी न थे।

"यदि गौरी को यह जमीन दे दी गई तो कोई उस ज़मीन के लालच में ही उस बिचारी से शादी कर लेगा। वह दुखिया भी किनारे लग जाएगी। किसान की जमीन जायदाद में उसको भी तो हिस्सा मिलना चाहिए।" बन्धुओं ने कहा। सब इस सुझाब को मान भी गये।

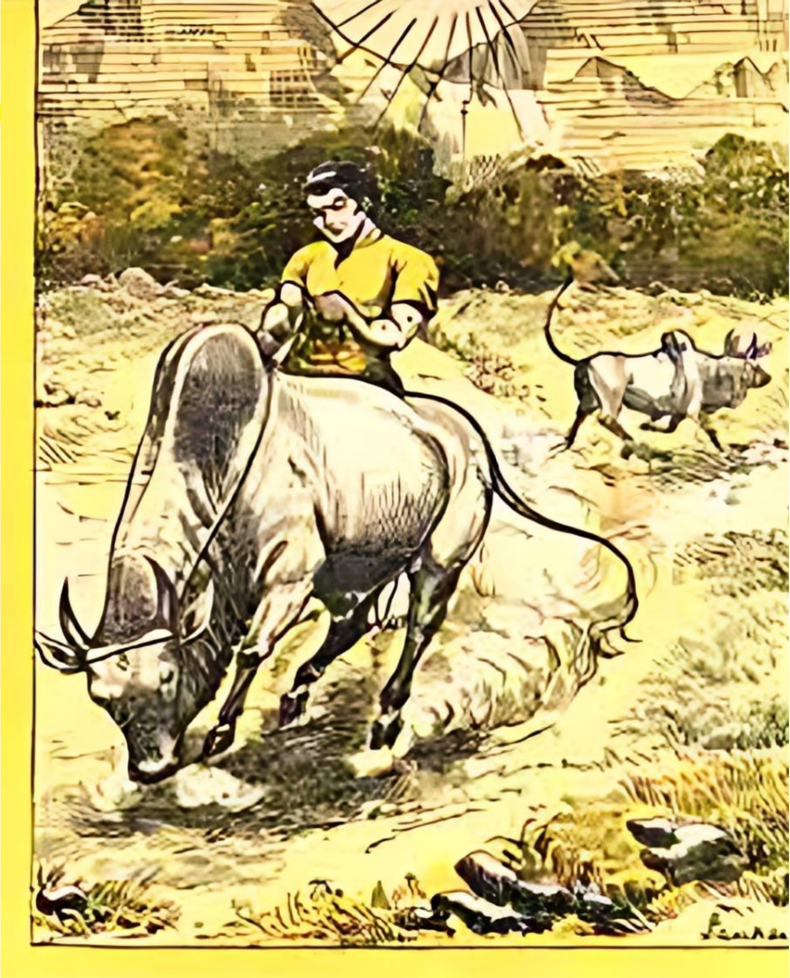
गौरी के होनेवाले पति का निर्णय बहुत दिन पहले ही हो गया था। उसका नाम था वीरभानु। वह बहुत गरीब था। वह गौरी से विवाह करने के लिए, देश-विदेश में पैसा कमा रहा था। वह उसी दिन वापिस आया। उसे देखकर गौरी बेहद खुश हुई। वीरभानु ने अपनी गठरी में से जेवर-जवाहरात लेकर, गौरी को दिखाते हुए कहा- "गौरी! यह देखो हमारी सम्पत्ति! अब हम शादी करके अपना घर-बार बसा सकते हैं। यह जरूरी नहीं कि हम जीवन भर इस

सम्पत्ति पर ही निर्भर रहें। में मेहनत करके और कमाऊँगा।"

गौरी खुशी खुशी विवाह के लिए मान गई। उसी समय मरे हुए किसान के एक सम्बन्धी ने आकर कहा-"गौरी! तुम्हारा भाग्य खिल उठा है। ताऊ की जमीन-जायदाद में तुम्हें भी हिस्सा देने की सोची है। हमारे बन्धुओं ने निश्चय किया है कि पहाड़ के नीचेवाली सारी जमीन तुम्हें दी जाये।" यह कह वह चला गया।

गौरी बड़ी दुखी हुई । वह जान गई कि और सब ने अच्छी भूमि हथियाकर, उसको भूतोंवाला टीला दे दिया था। वीरभानु न जान सका कि क्यों गौरी रो रही थी। जब उसने भूतों के टीले के बारे में बताया तो उसने कहा-"अरी पगली! भूत हमारा क्या बिगाड़ेंगे? अगर मैं उस टीले पर खेती न करूँ तो मेरा नाम बदल देना।" उसने गौरी को समझाया।

खेती के लिए सब जरूरी चीजें खरीदीं। जब और खेतों में हल चलाने निकले तो वह भी हल लेकर, भूतों के टीले पर गया। पर उसने हल चलाना शुरू ही किया ही था कि



उसे कुछ शोर शराबा सुनाई दिया। दोनों बैल बिदककर भाग गये। वीरभानु ने एक बैल को पकड़ना चाहा। पर बैल ने उसे नीचे गिराकर खींचा। उसका सिर एक पत्थर से लगा और सिर से खून निकलने लगा।

पति को, बिना बैलों के, और खून से लथपथ आता देखकर गौरी का माथा ठनका। उसने जोर से चिल्लाते हुए कहा-"क्या मैंने पहले ही नहीं बताया था? तुम्हें उस कम्बख़्त जमीन में पैर ही नहीं रखना चाहिए था। सालों घूमकर पैसा कमाया और यों गँवा दिया।"

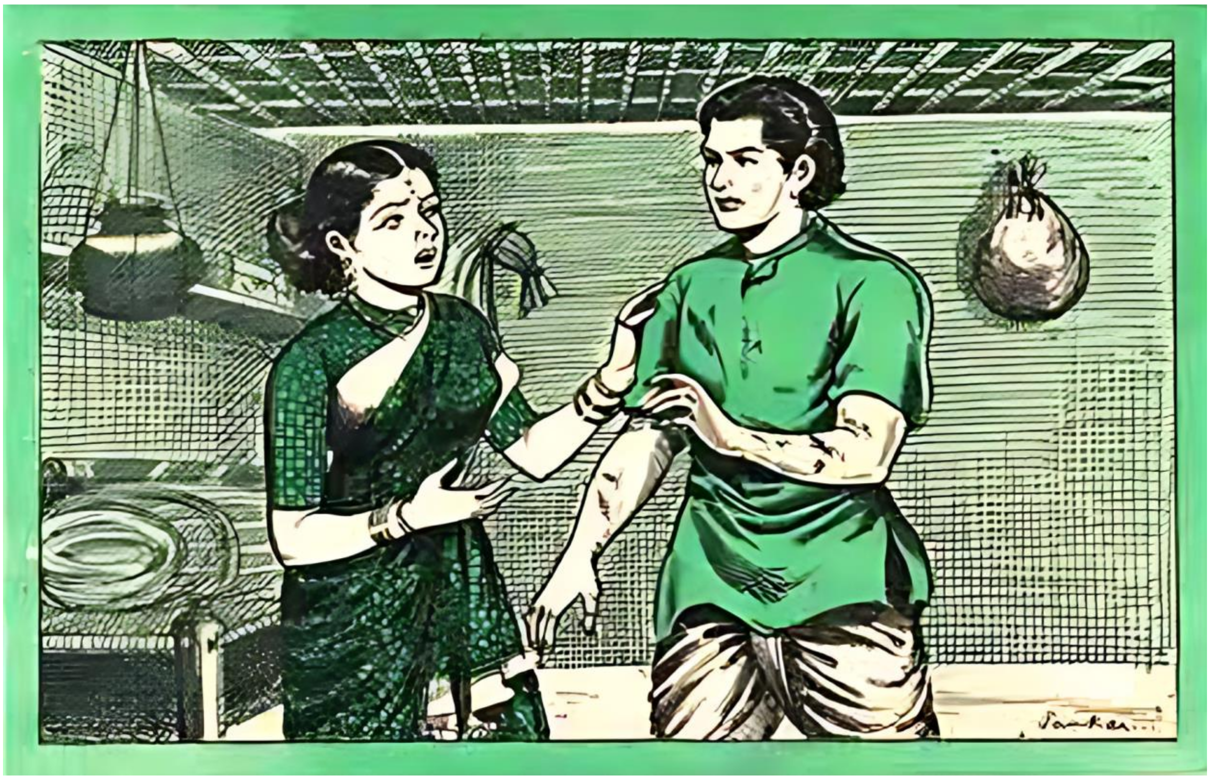
"मेरा भूतों ने कुछ नहीं बिगाड़ा है। बैल ही तो हैं! मैं उस जमीन को यों ही छोड़ दूँगा। क्या देखती रहो, क्या क्या करता हूँ।" वीरभानु ने कहा।

जो उसने कहा वही किया। रोज अन्धेरे में ही खेत चला जाता, और फिर अन्धेरा होने तक ज़मीन ठीक करता। इस तरह अकेला भला वह कितनी खेती करता? थोड़ी जमीन में ही वह धान बो सका। धान बड़ा हुआ। फसल काटकर वह घर ले गया।

भूतों ने उसे डराना चाहा, पर उसने परवाह नहीं की। गौरी ने भी कहा कि वह उसके साथ काम करेगी। पर चूँकि यह गर्भिणी थी, इसलिए वह न माना। जब तक वह घर वापिस न आ जाता, तब तक गौरी हथेली पर जान लिये बैठी रहती।

"यह धान तो घर के खर्च के लिए भी काफी नहीं है। अगले साल इससे कई गुना धान न पैदा करूँ तो देखना।" वीरभानु ने गौरी से कहा।

तीन वर्ष गुज़र गये। हर साल, पिछले साल से तो अधिक फसल होती पर एक आदमी की ही मेहनत थी। फिर बैल भी न थे। इसलिए वह भूतों के टीले के एक



भाग में भी खेती न कर सका। इस बीच गौरी दो बच्चों की माँ हो गई। माँ के लिए और बच्चों के लिए, वीरभानु, दिन-रात मेहनत करता। दस आदमियों का काम अकेला करता।

एक दिन जब वह जमीन ठीक कर रहा था, तो उसे लगा, जैसे बग़ल में कोई खड़े होकर कह रहा हो-"क्यों भाई! क्या सारी दुनियाँ कङ्गाल हो गई है? एक जोड़ी बैल रखकर क्यों नहीं खेत जोतते? क्यों यों खून पसीना एक करते हो?" वीरभानु ने सिर उठाकर देखा। कोई काला-कलूटा, कद्दावर, कसरती शरीरवाला आदमी बग़ल में खड़ा था।

यह सोचकर कि वह कोई भूत होगा, वीरभानु अपना काम करता गया। उसने कोई जवाब न दिया। पर उस काले कलूटे ने उसे छोड़ा नहीं। "तुम अपनी कठिनाइयों को क्यों नहीं बताते? अगर बन सका तो मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

वीरभानु उस काले कलूटे के पास गया। उसने जो कुछ गुज़रा था, उसे सुनाया। फिर उसने कहा-"मैं जानता हूँ, तुम कौन हो। मुझे तुम्हारी मदद नहीं चाहिए। जाओ।"





काले कलूटे ने कहा-"मुझे खूब पहचाना है। पर मैं तुम्हारे खेत में रहनेवाला भूत नहीं हूँ। उस पहाड़ पर जो वहाँ दिखाई दे रहा है, मेरा घर है। मुझे लोग पहाड़ी देवता कहते हैं। तुम्हें देखकर, मुझे भी कुछ समय तक आदमी की तरह जीने की मरजी हो रही है। इसलिए तुम मुझे अपने पास मज़दूर रखो।"

"मैं भला तुम्हें मज़दूर कैसे रख लूँ?" वीरभानु ने कहा।

"क्यों डरते हो?" पहाड़ी देवता ने कुतूहलवश पूछा।

वीरभानु को गुस्सा-सा आया। "अच्छा! तो सही! मैं तुम्हें मजदूर रख लूँगा। मैं पहाड़ी कहकर तुम्हें पुकारूँगा। मेरी पत्नी, बाल-बच्चों के सामने तुम्हें आदमी की तरह रहना होगा। अपने कारनामे न दिखाना। अगर तुम यह मानते हो तो काम करो, नहीं तो रास्ता नापो।"

पहाड़ी देवता यह मान गया। पहाड़ी की सलाह पर वीरभानु ने एक जोड़ी बैल और खरीदी। उससे उसने सारे टीले पर हल चला दिया। पहाड़ी बड़ा शक्तिशाली था। भले ही वह कितनी मेहनत करे, वह कतई न थकता। उस साल, भूतों के टीले पर सचमुच सोने की फसल हुई। गाँववाले वीरभानु को देखकर जलने लगे।

एक दिन गौरी, पहाड़ी को घर में बच्चों के संग छोड़ गाँव में किसी रोगी को देखने गई। वीरभानु उससे पहले किसी काम पर गाँव गया था। जब वह लौटा तो उसे बच्चों का कराहना, रोना-धोना, सुनाई दिया। जब वह अन्दर- गया तो बच्चे धान के बड़े टोकरे के पीछे चिल्ला रहे थे। "बाप रे बाप! हाय!"। पहाड़ी ठट्ठा मारकर हँस रहा था।

"क्या है?" वीरभानु ने पूछा।

"बच्चों के साथ खेल रहा हूँ।" पहाड़ी ने कहा।

"नहीं पिताजी! यह हमें डरा रहा है। वह अपने सिर को भेड़ का सिर, शेर का सिर बनाकर दिखा रहा है।" बच्चों ने कहा।

वीरभानु ने बच्चों को समझा-बुझाकर पहाड़ी से कहा-"चल बाहर, फिर मुझे अपना मुँह न दिखाना, जा।" वह पहाड़ी को बाहर धकेलकर ले गया। पहाड़ी चुपचाप बाहर चला आया। बाहर आकर उसने पूछा-"क्यों जाऊँ?"

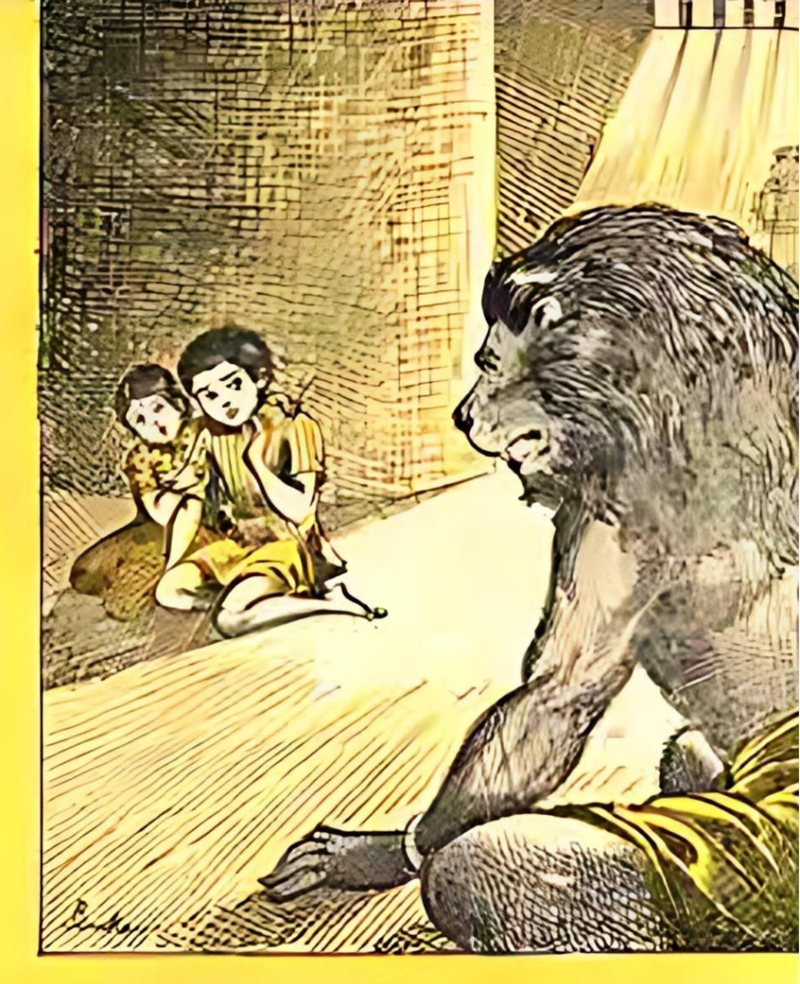
"अब तू मेरे नीचे काम नहीं कर सकता।" वीरभानु ने कहा।

"क्या मेरे बगैर तुम उस सारी ज़मीन में खेती कर सकते हो ?" पहाड़ी ने पूछा।

"जितना हो सकेगा, उतना ही करूँगा। पहले तू जा।" बीरभानु ने कहा।

"मैं नहीं जाऊँगा। कर ले, जो तू करना चाहता है।" पहाड़ी ने कहा।

अगले क्षण, वीरभानु उससे भिड़ पड़ा। दोनों काफी देर तक लड़ते



रहे। जैसे तैसे वीरभानु ने पहाड़ी को पछाड़ दिया। उसकी छाती पर जा बैठा। उसे खूब पीटा । पहाड़ी अट्टहास करने लगा। उसको हँसता देखकर वीरभानु को और भी गुस्सा आया। "तुझे हँसी आ रही है? मार अभी काफ़ी नहीं पड़ी है क्या?" उसने एक बार और मारा।

"बस बस! तुम ही जीते, मुझे उठने दो।" पहाड़ी ने कहा।

पहाड़ी खड़ा होकर, हँसता हुआ बोला-"मैंने तुम जैसा आदमी कहीं नहीं देखा है। मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार चला जाता हूँ। अब तुम अपनी ज़मीन

खुद जोतो। अगर कभी भूत तुम्हें सताये तो "पहाड़ी" कहकर पुकारना। मैं तुरन्त आकर उनकी ख़बर लूँगा।" वह खड़ा खड़ा कहीं गायब हो गया।

उसके बाद वीरभानु को कोई भूत न सता सका। उसकी जमीन, गाँव की सबसे अच्छी जमीन बन गई। गौरी, परिवार के साथ वह आराम से रहने लगा।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा- "राजा! मुझे एक सन्देह हो रहा है। पहाड़ी देवता का वीरभानु के पास मज़दूरी करने का क्या कारण था? और जब वह काम कर रहा था तो उसने अपने मालिक का क्यों विरोध किया। वीरभानु आखिर आदमी ही तो था। वह एक देवता को कैसे हरा सका? अगर तुमने इन प्रश्नों का जानवुझकर जवाब न दिया, तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"वीरभानु की, भूतों से मदद करने के लिए ही पहाड़ी देवता उसके पास मज़दूरी करने आया था। उसकी मदद से वीरभानु की हालत सुधर भी गई थी। यह जानने के लिए कि वीरभानु को बच्चों पर अधिक प्रेम है या धन पर उसने वीरभानु को गुस्सा दिलवाया। यह जानते हुए भी कि उसके चले जाने पर उसका नुक्सान होगा, उसने इसकी परवाह न की। यही नहीं, भूतों के राजा, पहाड़ी देवता से वह भिड़ भी पड़ा। यह देख पहाड़ी को सन्तोष हुआ और वह अपनी हार मान गया। यही बात है। सच पूछा जाये तो उसने पहाड़ी देवता को नहीं हराया था। विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन-भङ्ग होते ही बेताल शव के साथ अन्तर्धान हो गया और पेड़ पर जा बैठा।





ईरान देश के एक नगर में एक व्यापारी रहा करता था। व्यापार में उसे नुकसान हुआ, और उसे पैसे की तङ्गी होने लगी। उसने एक महाजन से सौ दीनारें माँगी। उसने यह भी कहा कि वह उसे मुँहमाँगा सूद देगा। महाजन को भय था कि कहीं सूद के फेर में मूल धन ही न मिले, इसलिए उसने उधार देने से इनकार कर दिया। परन्तु व्यापारी ने जिद पकड़ी कि उसे चाहे कुछ भी हो, उधार देना ही पड़ेगा।

"मुझे तेरा सूद नहीं चाहिए। अगर तूने ठीक समय पर रुपया न दिया तो तेरे शरीर से सेर-भर माँस कटवा लूँगा। मेरे लिए यही काफी है। बोलो क्या यह मञ्जूर है?" महाजन ने पूछा।

"मैं उसके लिए भी तैयार हूँ। मैं इस पूञ्जी से व्यापार करूँगा और व्यापार करके समय से पहले ही तुम्हारा उधार चुका दूँगा।" व्यापारी ने कहा।

महाजन ने लिखा-पढ़ाकर, एक दस्तावेज़ पर व्यापारी के दस्तखत करवा करके, उसको सौ दीनारें दे दी। व्यापारी उस धन से माल खरीदकर व्यापार करने निकला। व्यापार में उसे लाभ हुआ। व्यापारी ने अपने लाभ में से सौ दीनारें अलग कर अपनी पत्नी के पास भेजी। उसके पास यह खबर भी भिजवाई- "ये सौ दीनारें महाजन को देकर उसका उधार चुका देना। भूलना नहीं।"

व्यापारी की पत्नी शर्त के बारे में न जानती थी। "ऋण फिर कभी चुकाया जा सकता है। यह धन घर के खर्च के लिए चाहिए।" उसने वह पैसा खर्च कर दिया। व्यापारी कुछ दिनों बाद खूब

श्रीमती प्रेमलता



फायदे के साथ घर के लिए लौटा। रास्ते में उसे डाकुओं ने लूटा। उसके पास सिवाय पहने हुए कपड़ों के, कुछ न छोड़ा। फिर भी व्यापारी को खास फ्रिक न थी। क्योंकि वह इस ख्याल में था कि उसकी पत्नी ने महाजन का ऋण चुका ही दिया होगा।

घर आने पर ही व्यापारी को पता लगा कि वह किस हालत में था। महाजन का उधार चुकाया नहीं गया था। उसे चुकाने के लिए उसके पास धन भी न था। निश्चित समय भी गुजर चुका था।

व्यापारी ने महाजन को, जो कुछ गुज़रा था, सब बता दिया। परन्तु महाजन ने उसका विश्वास न किया।- "चाहे कुछ भी हुआ हो, मुझे मेरा पैसा वापिस कर दो। अगर तेरे पास पैसा न हो तो सेर भर माँस ही काटकर ले लूँगा।" महाजन ने कहा।

व्यापारी बहुत गिड़गिड़ाया। पर उसका महाजन पर कोई असर न हुआ। महाजन और व्यापारी मिलकर, एमेस्सा नगर के काजी के पास फैसला करने की फरियाद करने निकले।

रास्ते में उन्हें एक खच्चर दिखाई दिया। यह उनकी ओर ही भागा आ रहा था। उसका नालिक उसके पीछे भाग रहा था। उन दोनों को सामने से आते हुए देखकर खच्चर के मालिक ने कहा-"ज़रा उसे रोकिये। रोकिये तो सही।"

व्यापारी ने एक पत्थर लेकर खच्चर पर मारा। पत्थर खच्चर की आँख पर लगा और उसकी आँख फूट गई। खच्चर का मालिक व्यापारी से झगड़ने लगा। "यह कीमती खच्चर है और तूने उसकी आँख फोड़ दी है। मेरा नुक्सान किया है

तूने। हरजाना दे दे। वरना यहाँ से हिलने नहीं दूँगा।"

"तुम्हें इस आदमी को रोकने का हक़ नहीं है। तुम से पहले इसका मुझ पर कर्ज है। हम काजी के पास जा रहे हैं। चाहते हो तो तुम भी हमारे साथ आओ और काजी से शिकायत करो।" महाजन ने उससे कहा।

खच्चर का मालिक भी उनके साथ एमेस्सा नगर की ओर चला। अगले दिन रास्ते में उन्हें एक दृश्य दिखाई दिया। एक गधा, जिसकी पीठ पर सामान लदा हुआ था, दलदल में फँसा हुआ था और निकल नहीं पा रहा था। उसका मालिक अकेला कुछ न कर पाता था। उसने इन तीनों की मदद माँगी। तीनों गधे को दलदल में से निकालने लगे। महाजन और खच्चर का मालिक गधे पर लदे सामान को दोनों तरफ से खींचने लगे। अभागा व्यापारी गधे की पूँछ पकड़कर जोर से खींचने लगा। और गधे की पूँछ टूटकर उसके हाथ में आ गई।

"तूने मेरे गधे की पूँछ तोड़ी है। तूने मेरा नुक्सान किया है। हरजाना



देकर ही आगे चल।" गधे के मालिक ने कहा।

औरों ने उसे भी काजी के पास आने के लिए कहा।

चारों जल्दी ही एमेस्सा नगर पहुँचे। राज पथ पर उन्हें एक बड़ा आदमी, गधे पर सवार होकर जाता दिखाई दिया। देखने में वह कोई बड़ा राज-कर्मचारी लगता था। पर उसने शराब इस तरह पी रखी थी कि इधर उधर झूम रहा था। गिरने को था। पूछने पर मालूम हुआ कि वह एक बड़ा सरकारी निरीक्षक था।

थोड़ी दूर जाने के बाद वे एक मसजिद के पास आये। वहाँ सैकड़ों आदमी इकट्ठे होकर जुआ खेल रहे थे।

थोड़ी दूर जाने के बाद उन्होंने देखा कि एक आदमी को कब्रिस्तान ले जाया जा रहा था। वह व्यक्ति हाथ-पैर हिलाते, आते जाते लोगों से कह रहा था-"भाइयो! आप ही बताइये। ये लोग मुझे मरा जान कर गाड़ने ले जा रहे हैं। क्या मैं मर गया हूँ?" वह यह कहकर कराह रहा था।

"हाँ! तू मर गया है।" आते जाते लोग उससे कहते जा रहे थे।

इन विचित्र दृश्यों को चारों ने देखा। उस दिन रात को उसी शहर में ठहरकर, अगले दिन सवेरे वे काजी के सामने हाजिर हुए।

"एक एक करके अपनी अपनी फरियाद करो।" काजी ने कहा।

"हुजूर, इस व्यापारी ने मेरे पास से सौ दीनारें लेकर मुझे यह दस्तावेज लिखकर दिया है। निश्चित समय पर इसने उधार न चुकाया तो मैं इसके शरीर से एक सेर माँस काटकर ले सकता हूँ। निश्चित समय कभी का गुजर चुका है। इसने अभी तक



मेरा कर्ज नहीं चुकाया है। जब मैंने माँस काटकर लेना चाहा तो कहता है कि वह कानून के विरुद्ध है।" महाजन ने कहा।

काजी ने दस्तावेज पढ़कर कहा- "इस शर्त के अनुसार, इससे तेरा एक सेर माँस लेने का पूरा अधिकार है। तुम अपना चाकू लेकर तेज़ कर लो।"

व्यापारी पसीना पसीना हो गया। उसके हाथ-पैर ठण्ड़े हो गये।

चाकू तेज कर, महाजन को माँस काटने के लिए तैयार खड़ा देखकर काजी ने कहा-"तुम्हें सिर्फ एक सेर माँस लेने का हक़ है। अगर तूने उससे एक माशा अधिक या कम लिया तो वह इस शर्त के खिलाफ होगा। अगर तूने कानून के विरुद्ध कुछ किया, तो तुम्हें फाँसी पर चढ़वा दूँगा।"

महाजन को काटो तो खून नहीं। "पर यह कैसे किया जा सकता है?" उसने पूछा।

"तुमने ऐसी शर्त क्यों लिखवाई, जिसका पूरा करना मुश्किल था। चाहते हो तो अपना सेर भर मांस ले लो। नहीं तो, इस आदमी को सताकर तुम इतनी दूर लाये हो, इसके लिए तुम्हें दो सौ दीनारें उसको





हरजाने के तौर पर देनी होगी।" काजी ने कहा।

महाजन करता तो क्या करता? उसने काजी के सामने दो सौ दीनारें रख दीं।

फिर खच्चर के मालिक ने अपने नुकसान के बारे में शिकायत की। "हुजूर, खच्चर की कीमत हज़ार दीनारें हैं। इस व्यापारी ने उसकी आँख फोड़कर उसकी कीमत कम कर दी है। आप ही इन्साफ़ कीजिये।"

"इसके लिये मेरे तक आने की क्या ज़रूरत थी? एक आरा मँगवाओ। अपने खच्चर को आधा काटो। अच्छी आँखवाला हिस्सा तुम ले लो। अन्धी आँखवाला भाग उसे दे दो और ५०० दीनारें, बसूल कर लो।"

यह फैसला सुन, खच्चर का मालिक हैरान रह गया। उसने कहा-"अब भी मेरे खच्चर की कीमत कम से कम २०० दीनार से कम न होंगी। मुझे हरजाना वरजाना कुछ नहीं चाहिए। मुझे जाने दीजिये।"

"क्योंकि तुम व्यर्थ इस व्यापारी को अदालत तक खींचकर लाये हो, इसलिए तुम्हें इसको सौ दीनारें देनी होंगी।" काजी ने धमकाकर कहा।

खच्चर के मालिक ने, काजी के सामने सौ दीनारें रखीं।

फिर गधे के मालिक ने सामने आकर शिकायत की कि व्यापारी ने गधे की पूँछ तोड़ दी थी।

काजी ने सब सुनने के बाद कहा- "यह असम्भव है। मुझे विश्वास नहीं होता कि इस आदमी के खींचने से तेरे गधे की पूँछ उखड़ गई है। देखो, सामने मेरा गधा खड़ा है। तुम उसकी पूँछ तोड़ कर दिखाओ। जाओ।"

फ़रियादी ने काजी के गधे की पूँछ खींचकर देखी। गधे ने उस पर दुलती जमाई। उसके मुँह पर चोट लगी। इस प्रकार उसने तीन बार कोशिश की और तीनों बार उसे दुलत्ती खानी पड़ी। फरियादी से काजी ने कहा-"देखा? हो सकता है कि तेरे गधे की पूँछ ही न हो। तू इस आदमी पर झूठी शिकायत कर रहा है। इसलिए मैं तुझ पर सौ दीनारों का जुरमाना लगाता हूँ।"

न्याय के लिए आये थे, खुद पैसा देना पड़ा। फरियादी निराश चले गये। उनकी दी हुई दीनारों में से काजी ने आधी अपनी जेब में रख ली और आधी व्यापारी को दे दीं। "मैं अन्याय बिल्कुल नहीं सह सकता। मैं समझता हूँ कि तुम्हें मेरा फ़ैसला न्यायसङ्गत लगा होगा।" काजी ने कहा।

"जी, जी, हुजूर! मैं आपसे दो चार बातें पूछना चाहता हूँ। क्या कृपया आप मेरा सन्देह निवारण कर सकेंगे?" व्यापारी ने पूछा।

"पूछो। क्या हैं तुम्हारे सन्देह?" काजी ने सस्नेह पूछा।



"हम आ रहे थे कि हमें एक राज्य का एक निरीक्षक नशे में चूर, गधे पर जाता हुआ दिखाई दिया। उतने बड़े कर्मचारी को उस हालत में देखकर मुझे अचरज हुआ। इसका क्या कारण है?"

"इस नगर में शराब की कई दुकानें हैं। दूकानदार, पैसे के लालच में शराब में मादक द्रव्य मिलाते हैं। वे ऐसा न करें, यह देखना निरीक्षक का काम है। इसलिए हर दुकान में जाकर वह थोड़ा थोड़ा शराब चखता है। क्योंकि वह मिलावट की शराब चखता है, इसलिए

वह जल्दी नशे में झूलने लगता है। इस बारे में कुछ नहीं किया जा सकता।" काजी ने कहा।

"मस्जिद में क्यों जुआ खेला जा रहा है?" व्यापारी ने पूछा।

"वह भी कानून के अनुसार हो रहा है। सच बात तो यह है कि मस्जिद के पास पैसा नहीं है। इसलिए हमने उसमें जुआ खेलने की अनुमति दे दी है। जो कुछ पैसा जुए से मिलेगा, उससे मस्जिद की मरम्मत की जायेगी।" काजी ने कहा।

"एक आदमी को जीते जी ही क्यों कब्रिस्तान ले जा रहे थे? वह कहता है कि वह जिन्दा है। और सब कह रहे थे कि वह मर गया है! क्या अचरज की बात है?" व्यापारी ने पूछा।

"वह कानून के विरुद्ध बातें कर रहा है। दो महीने पहले उसकी पत्नी ने मेरे पास आकर कहा कि उसका पति मर गया है। उसने मुझ से दुबारा शादी करने की अनुमति माँगी। मैंने गवाही के बल पर अनुमति दे दी। फिर उसके पति ने आकर कहा कि वह जिन्दा है। इसलिए उसको उसकी पत्नी वापिस मिलनी चाहिए। कानून के अनुसार मैं अपने दिये हुए फैसले को नहीं बदल सकता। इसलिए, वह भूत है, यह साबित करने के लिए, मैंने यह हुकुम दे दिया कि उसे गड़वा दिया जाये। यहीं बात है।" काजी ने कहा।

काजी के फैसले सुनकर व्यापारी को बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि उसके फैसले के कारण ही वह मौत से बचा था, इसलिए उसने कुछ न कहा और चुपचाप घर वापिस चला गया और खुशी खुशी अपना कारोबार करने लगा।





गिरिदुर्ग नाम का एक नगर था। उस नगर के राजा का नाम इन्दुमित्र था। उसकी बहुत दिनों बाद एक लड़की पैदा हुई। उस लड़की का नाम स्वयंप्रभा रखा गया। वह छुटपन से ही तपस्या करके मोक्ष प्राप्त करना चाहती थी।

स्वयंप्रभा जब बड़ी हुई, तब उसके माँ बाप ने सौ राजकुमारों के चित्र मँगवाकर, उनमें से एक को चुनकर अपना पति निश्चय करने के लिए कहा। परन्तु स्वयंप्रभा ने कहा कि मैं विवाह ही न करना चाहती।

इसके कुछ दिनों बाद, वीणावती नाम की प्रसिद्ध गायिका गिरिदुर्ग आई। वीणावती के पास एक अपूर्व वीणा थी। राजाओं के समक्ष उस बीणा को बजाकर, वह ईनाम पाती देश का भ्रमण कर रही थी।

स्वयंप्रभा के मनोरंजन के लिए वीणावती के सङ्गीत का आयोजन किया गया। वीणावती, कोई प्रणय-राग गाने लगी। उसे सुनते ही स्वयंप्रभा को गुस्सा आया, उसने कहा-"क्यों नहीं कोई भक्ति रस का गीत गाती हो?" उसे इतना क्रोध आया कि उसने वीणा को लात मार दी। वीणा के दो टुकड़े हो गये।

सात पीढ़ियों से, वह वीणा उसके घर में चली आती थी। उस वीणा को टूटा देखकर, वीणावती को बहुत दुःख हुआ। "इस तरह की बीणा मुझे कहीं न मिलेगी। इसकी सहायता से मैंने कितने ही राज-दरबारों में ईनाम पाया है। बस, अब इसके साथ मेरा सङ्गीत भी ख़तम हो गया है। बताइये मैंने क्या कसूर किया है? आपने यह अन्याय क्यों किया है?"

श्री ज्ञानेन्द्र कुमार

वीणावती यह कह कर रोने लगी। स्वयंप्रभा को पश्चाताप होने लगा।

उसने अपने गले का रत्नहार वीणावती को देते हुए कहा-"यह हार भी हमारे वंश में सात पीढ़ियों से चला आ रहा है। बहुत कीमती है। इसलिए इसे लेकर तसल्ली कर लो।"

वीणावती, राजकुमारी से वह रत्नहार लेकर टूटी हुयी वीणा को उठाकर अपने रहने की जगह गई। उसे उस नगर में रहने की इच्छा न हुयी। वह उसी दिन उस नगर को छोड़कर किसी और देश को चली गई। वह रास्ते में, प्रति राजधानी में रुकती, दरबार में, दरबारी वीणा बजाती, और ईनाम पाती। परन्तु उस वीणा पर वह सन्तोष न मिलता, जो उसको अपनी वीणा पर मिलता था।

इस प्रकार जाती जाती वह एक दिन कालीगुप्त नाम के नगर में पहुँची। वहाँ सराय में ठहरी। शाम को चित्रशाला देखने गई। चित्रशाला में कई चित्र थे। एक चित्र में, एक पुरुष वीणा बजा रहा था। वह पुरुष बहुत सुन्दर था। परन्तु वीणावती को आकर्षित किया उसकी वीणा ने ही।



वह ठीक उसकी टूटी हुयी बीणा की तरह ही थी।

वह उस चित्र को देखकर अचरज कर रही थी। उसने चित्रशाला के सैनिकों से पूछा-"यह चित्र किसका है?"

"यह हमारे राजा के चौथे पुत्र सहदेव वहाँ का है।" उन्होंने जवाब दिया।

यह पता लगते ही वीणावती के एक मन में एक इच्छा पैदा हुयी। वह राजकुमार को अपने सङ्गीत से खुश करके उस वीणा ईनाम में पाना चाहती थे। यही उसकी इच्छा थी। वह तुरन्त सहदेव का घर



खोजने निकली। उससे मिलकर उसने उन्हें सङ्गीत सुनाने की अनुमति माँगी।

सहदेव ने अनुमति दे दी और अपनी वीणा लेकर उसके सामने रख दी। वीणा के जब वह तार ठीक कर रही थी तो वीणावती बहुत ही आनन्दित हुयी। यह ठीक उसकी वीणा की तरह थी। उसने उस आनन्द में बहुत अच्छी तरह गाया।

उसका सङ्गीत सुनकर सहदेव बहुत सन्तुष्ट हुआ। उसने वीणावती से पूछा कि यह क्या ईनाम चाहती थी। वीणावती ने स्वयंप्रभा के बारे में कहा और बताया कि उसने कैसे उसकी वीणा तोड़ दी थी। उसने अपनी टूटी वीणा दिखाकर कहा- "इस वीणा से पहले और वीणाओं पर मुझे ऐसे लगता था जैसे मेरा हाथ टूट गया है। कृपया मुझे यह वीणा दिलवाइये।"

सहदेव ने वीणावती की वीणा को देखा। "मैं इस बीणा को फिर जोड़कर तुम्हे दे दूँगा। आप फिक्र न करें।" उसने कहा। उस दिन, रात भर वह वीणा ठीक करता रहा। जब वीणावती अगले दिन आई तो उसने वह वीणा उसे दे दी। बहुत ध्यान से देखने पर भी, वीणा में कहीं जोड़ न दिखाई देता था। राजकुमार की कारीगरी की प्रशंसा में वीणावती ने उसे रत्नहार देते हुए कहा-"इसको मैंने अपनी वीणा के बदले में स्वयंप्रभा से लिया था। क्योंकि आपने मेरी वीणा को ठीक किया है, इसलिए इस हार को आप अपने पास रखिये।"

वीणावती के चले जाने के बाद सहदेव स्वयंप्रभा के बारे में सोचने लगा। वीणावती ने उसे बता दिया था कि स्वयंप्रभा बहुत सुन्दर थी, परन्तु उसके मन में वैराग्य था।



जैसे भी हो, सहदेव ने स्वयंप्रभा को अपनी पत्नी बनाना चाहा।

इस बीच, इन्दुमित्र जान गया कि उसकी लड़की के गले में हार न था। सारा वृतान्त जानकर वह बड़ा चिन्तित हुआ। उसके घराने में सात पीढ़ियों से चलती आई उस माला का विशेष महत्व था। जो कोई उसे पहनेगा, वह ही गिरिदुर्ग का राजा होगा। स्वयंप्रभा यह न जानती थी। इसलिए उसने उसे बीणावती को दे दिया था। राजा पागल सा हो गया। उसने अपने सैनिकों को वीणावती को पकड़कर लाने के लिए कहा।

सैनिक, हर किसी से पूछते पूछते, कुछ दिनों बाद वीणावती को पकड़ सके। उसने उनके साथ जाकर, राजा इन्दुमित्र से कहा-"महाराज! आपकी लड़की ने जो हार मुझे दिया था वह अब मेरे पास नहीं है। कालीगुप्त नगर के राजकुमार, सहदेव ने मेरी वीणा ठीक करके मुझे बापिस दी और मैंने उनको वह माला दे दी।" वीणावती ने सारी कहानी सुनाई।

महाराजा ने तात्कालिक रूप से वीणावती को जेल में डलवा दिया और अपने सनिकों को कालीगुप्त नगर भेजा। थोड़े दिनों में वापस आकर उन्होंने कहा-"महाराज! मालूम हुआ है कि राजकुमार सहदेव कालीगुप्त नगर में नहीं है। कोई नहीं जानता कि वे कहाँ गये हैं।"

रत्नमाला न मिल सकी थी, इसलिए राजा की चिन्ता और भी बढ़ गई। इतने में उन्हें एक खबर मिली कि नगर से बाहर, रत्नगिरि पहाड़ पर मन्दिर में अद्वैत शिवानन्द योगी आकर तपस्या कर रहे थे। वे तुरन्त, अपने दरबारियों सहित योगी को देखने गये।

वह योगी और कोई न था, सिवाय कालीगुप्त के राजकुमार सहदेव के। वह जैसे भी हो, स्वयंप्रभा से विवाह करने के लिए, यह कपट वेष बनाकर आया था। यह कोई न जानता था।

राजा ने आकर उसको नमस्कार किया। योगी वेष धारण किये हुए सहदेव ने कहा-"राजा! मैंने अपनी दिव्य-दृष्टि से जान लिया है, तुम क्यों आये हो। तुम्हारी लड़की ने जो रत्नहार खो दिया है, वह उसके पास फिर पहुँच जायेगा। तुम चिन्ता न करो। तुम अपनी लड़की के विवाह के बारे में भी चिन्ता कर रहे हो। उसके विवाह का शुभ मुहूर्त भी दूर नहीं है। तुम सुखपूर्वक रहो।"

राजा को ऐसा लगा जैसे उस पर से कोई भारी बोझ उठा दिया गया हो। "महात्मा! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। मेरी लड़की बिल्कुल विवाह नहीं करना चाहती। आप ऐसी कृपा कीजिये कि उसका मन बदल जाये।" राजा ने उससे प्रार्थना की। फिर वह अपने घर चला गया।

उसने अपनी लड़की को बुलाकर कहा-"बेटी! रत्नगिरि पर एक महायोगी आये

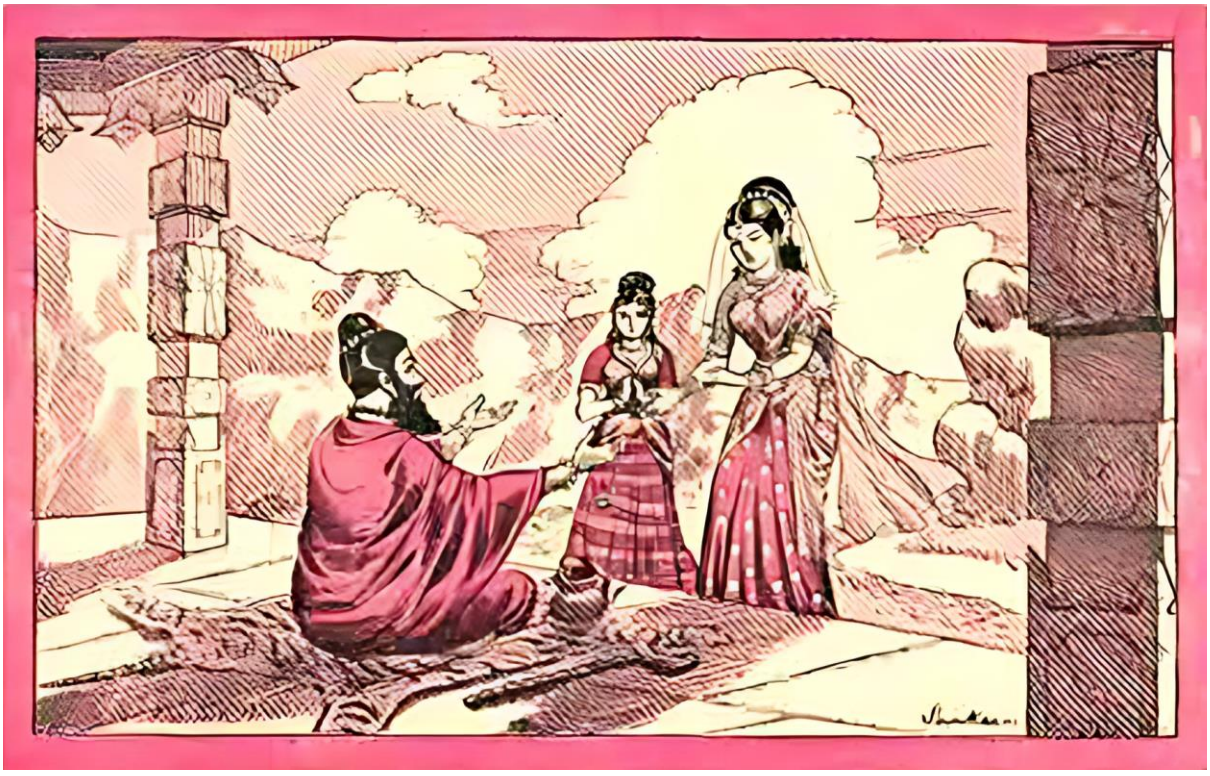


हुये हैं। उनकी शक्ति, सिद्धि अद्भुत है। तुम एक बार जाकर उनके दर्शन क्यों नहीं कर आती हो?"

यह जानते ही स्वयंप्रभा ने योगी को देखकर, उनका उपदेश सुनना चाहा। वह हेमा नाम की सहेली के साथ रत्नागिरि पर गई। उसने योगी के सामने साष्टाङ्ग किया। तब सहदेव ने उससे कहा-"राजकुमारी! हम तुम्हारी इच्छा जानते हैं। तुमने अनजाने एक रत्नहार एक गायिका को दिया है। उसके वापस न मिलने पर तुम दुखी हो रही हो। क्यों?"

"स्वामी! उस हार के कारण मेरे पिता ने उस गायिका को जेल में डाल रखा है। कम से कम उसकी विमुक्ति के लिए मुझे वह हार दिलवाइये।" स्वयंप्रभा ने कहा।

सहदेव ने आँखें बन्द कर ली। कमण्डल में हाथ रखकर, रत्नहार को बाहर निकाल कर, स्वयंप्रभा के हाथ में रखते हुए कहा-"यह लो, तुम्हारा रत्नहार। इसे अपने पिता को देकर, उसको कारावास से मुक्त करो। तुम्हारा जल्दी ही विवाह होगा। यह हमारा आशीर्वाद है।"





स्वयंप्रभा विवाह का नाम सुनते ही हैरान हो उठी। उसने कहा-"स्वामी! मैं विवाह करना नहीं चाहती। मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये कि मैं इस भवसागर से तर जाऊँ। विवाह के लिए पिताजी मुझे तङ्ग कर रहे हैं। आप ही कोई रास्ता बता सकेंगे, इस आशा से आई हूँ।"

"तुम्हारा विवाह होकर रहेगा। अगर तुम चाहती हो कि तुम्हारा वैराग्य खराब न हो, तो उसका एक ही रास्ता है। वह यह कि तुम मुझ से विवाह करो।" सहदेव ने धीमे से कहा।

यह सुनते ही स्वयंप्रभा को योगी पर सन्देह होने लगा। "स्वामी! आपने तो सब कुछ छोड़कर सन्यास लिया है। फिर विवाह क्यों?" स्वयंप्रभा ने पूछा।

"पगली! हम तुम्हारी रक्षा करने के लिए विवाह करेंगे। अगर तुम नहीं चाहती हो तो छोड़ दो।" सहदेव ने कहा।

स्वयंप्रभा की सहेली हेमा ने सलाह दी कि योगी का कहना मानना अच्छा था। नहीं तो किसी राजकुमार से शादी करनी पड़ेगी और दुनियाँ भर के पाप करने होंगे। आख़िर स्वयंप्रभा अद्वैत शिवानन्द से शादी करने के लिए मान गई।

उन दोनों का तभी विवाह भी हो गया। स्वयंप्रभा अपनी सहेली हेमा के साथ घर चली गई। क्योंकि उसका काम पूरा हो गया था, सहदेव भी अपना कपट वेष उतारकर अपने राज्य को वापिस चला गया।

रत्नागिरि के मन्दिर के पुजारी का माधवस्वामी नाम का एक दामाद था। मन्दिर में पहले राजा का आना, फिर राजकुमारी का आना उसने देखा। उसने सहदेव को गेरु वस्त्र, झूठी दाढ़ी-मूँछ फेंककर जाते हुए भी देखा।

वह जान गया कि शिवानन्द योगी कपटी था।

तुरत माधवस्वामी ने गेरु वस्त्र, दाढ़ी मूँछ पहन ली और तपस्वी की तरह बैठ गया। वह इस आशा में था कि राजा फिर आएँगे। उसकी आशा पूरी भी हुई।

जब राजा को मालूम हुआ कि योगी की कृपा के कारण उसकी लड़की को रत्नहार मिल गया है, वह शिवानन्द योगी के दर्शन के लिए गया। उसने योगी को रत्नों से जड़ी रुद्राक्ष माला समर्पित की। राजा यह न जान सका कि वह योगी वह न था, जिसको उसने पहले देखा था। माधवस्वामी बड़ा सन्तुष्ट हुआ। उसने सोचा कि उसे बहुत-से ईनाम मिलेंगे।

क्योंकि योगी के कहने से रत्नहार मिल गया था, इसलिए राजा को विश्वास हो गया कि स्वयंप्रभा का विवाह भी जल्दी हो जायेगा। उसने विवाह की तैयारी करनी शुरू करदी। यह देख स्वयंप्रभा ने अपने पिता से कहा कि उसकी शादी शिवानन्द योगी से पहले ही हो गई थी। तो राजा को बहुत निराशा हुई।



फिर उसने अपने को समझा कर पूछा-"यह बात पहले ही मुझ से क्यों नहीं कहीं थी? में अब तुम दोनों का बड़े धूमधान से विवाह करूँगा।"

स्वयंप्रभा के विवाह के निमन्त्रण पत्र देश-विदेश भेजे गये। राजबन्धु, वाद्यों के साथ आकर रत्नगिरी से कपटी शिवानन्द योगी को राजमहल में ले गये। यह जानकर कि उसका राजकुमारी के साथ विवाह होने जा रहा है, माधवस्वामी की अक्ल चकरा गई।

स्वयंप्रभा की तरफ से हेमा दुल्हे को देखने आई। यह जानकर कि वह असली

शिवानन्द योगी नहीं है, उसने यह बात स्वयंप्रभा और उसकी सहेली से कह दी।

उन सबने आकर माधवस्वामी को घेर लिया और हँसी-मजाक में उसकी दाढ़ी मूँछ उखाड़ कर फेंक दी। उसकी पोल खुल गई।

राजा यह सुनकर आग बबूला हो उठा। उसने कपटी योगी को बुलाकर पूछा-"नीच, तुम कौन हो? सच कहो नहीं तो सूली पर चढ़वा दूँगा। असली शिवानन्द योगी कहाँ है?"

"महाप्रभु! क्षमा कीजिये, आप जिसे असली शिवानन्द योगी समझ रहे हैं, वह भी नकली है। मैंने उसकी पोशाक, दाढ़ी, मूँछ पहन रखी थी। मुझे छोड़ दीजिये।" माधवस्वामी गिड़गिड़ाया।

राजा को कुछ न सूझा। उसे कोई ऐसा उपाय न सूझा, जिससे उस योगी को मालूम किया जा सके, जिसने स्वयंप्रभा के साथ विवाह किया था।

इस बीच, सहदेव को स्वयंप्रभा के विवाह का समाचार मिला। यह अनुमान कर कि शिवानन्द योगी का वेष धारण कर, कोई और राजकुमारी से शादी कर रहा था, वह तुरन्त गिरिदुर्ग पहुँचा। सहदेव महाराज से मिला। उसे सारी बात बता दी। माधवस्वामी ने भी सहदेव को पहचान कर बताया कि उसी ने शिवानन्द योगी का ढोङ्ग रचा था। हेमा और स्वयंप्रभा ने भी उसको पहचान लिया। यह जानकर कि सहदेव ने उसको पाने के लिए ही इतना ढोङ्ग रचा था, स्वयंप्रभा उससे विवाह करने के लिए मान गई। राजा भी यह जानकर सन्तुष्ट हुआ कि उसका दामाद राजकुमार ही था। सहदेव और स्वयंप्रभा की धूमधाम से शादी हुयी।





सरयू नदी के किनारे, एक ग्राम में एक ज्योतिषी रहा करता था। आस-पास के गाँवों में, वह अपने ज्योतिष के पाण्डित्य के लिए प्रसिद्ध था। लोगों का यह भी ख्याल था कि जन्मपत्री लिखने में उससे अच्छा कोई न था।

ज्योतिषी की कीर्ति राजधानी तक भी पहुँची। राज कर्मचारियों ने मिलकर उसे राजधानी में बुलवाया। थोड़े दिनों बाद, ज्योतिषी को राजा का आश्रय भी मिल गया। जो कुछ वह बताता, वह ठीक निकलता। होते होते ज्योतिषी को कर्मचारियों का समर्थन मिल गया। उसने काफी पैसा भी कमा लिया। कुछ दिनों में, नदी किनारे अपने ग्राम में वह सैकड़ों एकड़ भूमि का मालिक भी बन गया। फसल के दिनों में ज्योतिषी अपने गाँव चला जाता, फसल कटवाता उसको तुलवाता, गोदामों में रखवाता और उसकी बिक्री का प्रबन्ध कर, वह फिर राजधानी वापिस आ जाता।

एक साल वह अपने गाँव गया। कटी कटाई फसल खलिहान में ही पड़ी थी। दुपहर को भोजन के बाद, वह अपने घर के बराण्डे में बैठा था।

उस समय गाँव का घोबी, धुले कपड़े गधे पर लाद, घर जा रहा था। वह ज्योतिषी को देखकर रुका और उसने उससे पूछा-"क्यों हुजूर! फसल सारी, लगता है, खलिहान में ही है। जल्दी घर ले आइये। उसे लाने में देरी काहे की है?"

"ले आयेंगे। अभी, जल्दी क्या है?" ज्योतिषी ने कहा।

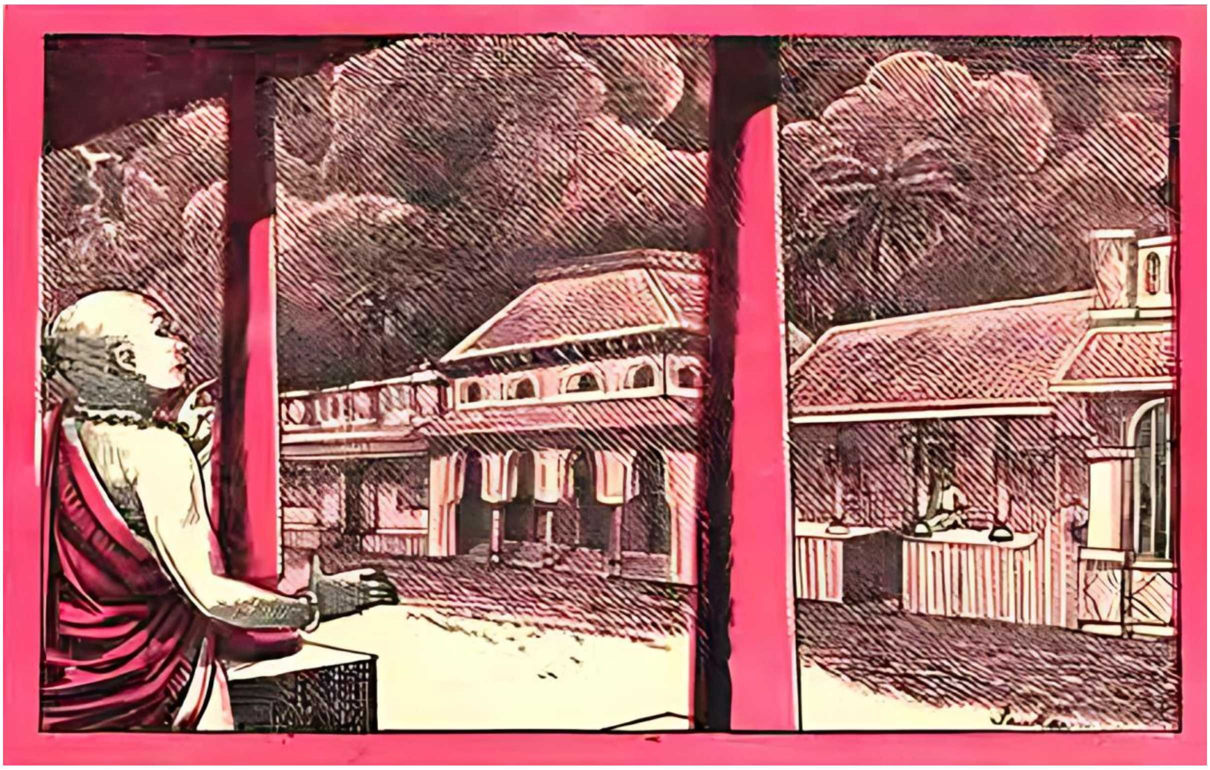
श्री सुनील कुमार

"जल्दी क्यों नहीं है?.... एक डेढ़ घण्टे में तूफ़ान जो आ रहा है!" धोबी ने कहा।

ज्योतिषी ने कहा-"तेरा सिर! जा जा। इन दिनों वर्षा ही नहीं होती है..... फिर तूफान कहाँ से आयेगा? आसमान की ओर देख, कितना साफ है, कहीं एक बादल नहीं। अच्छी ठण्डी हवा चल रही है। इधर उधर की ऊँटपटाङ्ग बातें बुजुर्गों से न किया करो।"

"मैं आपके भले की कह रहा हूँ। मैं, दिन, महीने के बारे में नहीं जानता, पर यह बात पक्की है कि थोड़ी देर में तूफान आयेगा। तुरन्त गाड़ियों में, सारी फ़सल ढ़ोकर घर ले आइये, वरना अच्छी बड़ी फसल फिजुल खाक हो जायेगी।" कहता कहता, धोबी, अपना गधा हाँकता हाँकता चला गया।

ज्योतिषी ने, धोबी की नादानी पर हँसते हुये, आकाश की ओर देखा। पश्चिम की ओर उसे अंगूठे के बराबर बादल दिखाई दिया। देखते देखते.... जङ्गली हाथियों की तरह, चिंघाड़ते चिंघाड़ते, बादल चारों ओर से गरज गरजकर उमड़ने लगे। सूर्य छुप गया। सर्वत्र अन्धकार



सा छा गया। जोर से आन्धी चलने लगी। आन्धी इतनी तेज़ कि बड़े बड़े पेड़ भी उसकी थपेड़ न सह पा रहे थे। बिजली चमकने लगी। बून्दा बान्दी शुरू हो गई।

ज्योतिषी को कुछ न सूझा कि क्या करे। धोबी के कहने पर अगर फसल ले आता तो कोई नुक्सान न होता। क्योंकि पञ्चाङ्ग के अनुसार इन दिनों वर्षा की सम्भावना न थी इसलिये ज्योतिषी ने धोबी की बात न सुनी।

"हाँ.... मगर धोबी कैसे एक घण्टे पहले जान सका कि तूफान आ रहा था।" ज्योतिषी को आश्चर्य हो रहा था। तूफान के थोड़ा कम होते ही वह धोबी के घर भागा भागा गया। "अरे, तूने कहा और वर्षा आ गई। अजीब बात है। तू जरूर ज्योतिष जानता है। किसके पास सीखा है? उसने उत्कण्ठापूर्वक पूछा।

"और कौन, हुजूर, मेरे गधे ने ही मुझे ज्योतिष सिखाया है। उसके सामने ये पञ्चाङ्ग वगैरह किसी काम के नहीं। अभी वर्षा के आने में थोड़ी देर होती है कि उसके शरीर के बाल खड़े हो जाते हैं। वह कान, और आँखें उस ओर करके वर्षा को सुनने की कोशिश करता है, जिसका हमें भान भी नहीं होता। फिर दुम लपेट कर, इधर उधर कूदता फाँदता है। उसका ज्योतिष कभी ग़लत नहीं जाता।

ज्योतिषी ने जाते हुये कहा-"आज जो कुछ हुआ है किसी से कहना नहीं, तेरा भला होगा। नहीं तो व्यर्थ मेरी बदनामी होगी।" उसने धोबी को मनाया।

परन्तु यह बात सबको मालूम हो गई। उन लोगों की संख्या कम हो गई, जो मौसम आदि के बारे में, ज्योतिषी की सलाह हमेशा लिया करते थे।





[८]

[भुवन सुन्दरी के कारण ट्रोय नगर का घेरा डाला गया। घेरे के दसवें वर्ष में दोनों तरफ के कई बड़े योद्धा मारे गये। इनमें ग्रीक सेना के वज्रकाय और भूघव मुख्य थे और ट्रोजन सेना के वीर सिंह, मोहन आदि मुख्य थे। मोहन के मारे जाने के बाद अरिभयङ्कर ने उसकी इच्छा के बगैर भुवन सुन्दरी से विवाह कर लिया। ट्रोय के पतन के लिए कृतनिश्चय रूपधर की, भुवन सुन्दरी और उसकी सास ने भी मदद की।]

ट्रोय नगर के पतन के कुछ दिन पहले ही वर्धन के लड़कों का आपसी झगड़ा बहुत चढ़ गया।

यह देख, वर्धन ने ग्रीक लोगों से, रहस्य-पूर्वक सन्धि करनी चाही। उसने अपने साले, प्रत्यान्न को राजा के पास भेजा। प्रत्यान्न की अरिभयङ्कर से बिल्कुल न पटती थी। इसलिए सन्धि के बारे में बातचीत करने के बदले उसने रूपधर से मिलकर एक षड्यन्त्र किया। षड़यन्त्र की शर्त यह थी कि राज-सिंहासन और राज्य का आधा धन प्रत्यान्न को मिले और ट्रोय नगर रूपधर को सौंपा जाये। इस षड़यन्त्र को सफल करने के लिए, प्रत्यान्न ने रूपधर से कहा कि प्रशंस की मदद भी जरूरत पड़ने पर मिल सकती थी।



ट्रोय नगर में, ग्रीक लोगों की सहायता करनेवाले भी थे। उस नगर से बुद्धिमति की मूर्ति चुरा ली गई थी। ट्रोय नगर के पतन के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उपस्थित थीं। अब केवल ग्रीकों का नगर में प्रवेश करना बाकी था। इसलिए ग्रीक एक बड़े काठ के घोड़े के बनाने में दिन-रात लगे हुए थे।

इस घोड़े को तैयार करनेवाले का नाम था दोर्दण्ड। वह ग्रीक सेना की सहायता करने के लिए तीस नौकाओं को लेकर आया था। वह बड़ा कारीगर था। वह मल्ल युद्ध में भी बड़ा माहिर था। परन्तु बड़ा डरपोक था। उसने एक काठ का घोड़ा बनाकर उसके एक तरफ एक दरवाज़ा भी बनवाया, जो बाहर से न दिखाई देता था। और उसने घोड़े के दूसरी तरफ खुदवा दिया- "वापिसी यात्रा सुरक्षित रूप से हो सके, इसके लिए ग्रीकों का, बुद्धिमति देवी के लिए यह उपहार.... घोड़े से बाहर आने के लिए उसने एक बड़ी सीढ़ी भी तैयार की।

रूपधर ने कुछ ग्रीक वीर योद्धाओं को, उस घोड़े के पेट में छुपे रहने के लिए प्रेरित किया। इनमें प्रताप, रूपधर, देवमय आदि, तीस योद्धा थे। घोड़े के बनानेवाले दोर्दण्ड को भी उसमें चढ़ने के लिए कहा गया। सबके चढ़ने के बाद, वह भी जबर्दस्ती चढ़ाया गया। उसके चढ़ने के बाद सीढ़ी अन्दर खीच ली गई। दरवाजा बन्द कर दिया गया और एक मजबूत ताला भी लगा दिया गया।

शेष कार्य, रूपघर की बनाई हुई योजना के अनुसार सम्पन्न हो गया।

उस दिन, अन्धेरा होते ही ग्रीक लोगों ने अपनी छावनी में आग लगा दी।



सिवाय उन लोगों के जो घोड़े के पेट में छुपे हुए थे, बाकी सब ग्रीक सैनिक, राजा के साथ जहाज़ में लेनेडोस द्वीप के पास लङ्गर डाले हुए थे। परन्तु एक ग्रीक योद्धा जान बूझकर काठ के घोड़े के साथ ट्रोय नगर के पास ही रह गया। वह रूपधर का सम्बन्धी था। उसका नाम था चौर्यनाथ। ग्रीक जहाज़ों को कल वापिस आना चाहिए था, इसका सङ्केत देने के लिए वह वहाँ रह गया था।

अगले दिन, सवेरा सुआ। ट्रोय दूत ग्रीक छावनी देखने आये। उन्होंने वापस जाकर बताया कि सारी ग्रीक छावनी खाक हो गई थी और समुद्र के किनारे एक काठ के घोड़े को छोड़कर, ग्रीक जहाजों में भाग गये थे। यह सुनते ही, वर्धन अपने लड़कों को लेकर घोड़ा देखने गया।

जब कि सब आश्चर्य से काठ के घोड़े को देख रहे थे, तब एक व्यक्ति ने कहा-"जब यह बुद्धिमति के लिए उपहार में समर्पित किया गया है, तो हमें इसे क्यों नहीं, बुद्धिमति के मन्दिर के सामने यथाविधि रखना चाहिए?"

एक और ने कहा-"इस युद्ध में, बुद्धिमति ने हमारी मदद करने की अपेक्षा शत्रु की अधिक मदद की है। हमें इसे यहीं जला देना चाहिए। नहीं तो हमें इसे तोड़कर देखना चाहिए कि इसके पेट में क्या है?" और कई ने भी यही कहा।

ये बातें वर्धन को बिल्कुल न जँची। "जो वस्तु देवी को उपहार में दी गई हो, उसका नाश करना बहुत बड़ा पाप है। हमें इस घोड़े को, पहियों पर रख नगर में ले जाना चाहिए।" उसने गम्भीरता पूर्वक सबसे कहा।


CHITRA

राजा के कथनानुसार, घोड़े को पहिये लगाकर, वे किले के दरवाजे के पास ले गये। पर दरवाज़े में से वह अन्दर न ले जाया जा सका। इसलिए ट्रोजनों ने क़िले की दीवार एक जगह तोड़ दी, और उस जगह में से घोड़ा अन्दर ले जाया गया। जगह तङ्ग थी, इसलिए दो तीन बार काठ के घोड़े को अच्छी रगड़ लगी।

घोड़े के अन्दर आते ही किले की दीवारे फिर चिन दी गई। और घोड़े के नगर को बीचों बीच ले जाया गया।

घोड़े को लेकर, ट्रोजनों में बहस होने लगी। कोई कुछ कहता तो कोई कुछ और। बात बढ़ते बढ़ते उनमें खटपट भी हो गई। वर्धन की लड़की, जालिनी को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। वह घोड़े को देखकर चिलाई-"इस घोड़े में सशस्त्र वीर हैं।" प्रत्यान्न के लड़के तीक्ष्ण दृष्टि ने भी यही बात कही। "आप क़तई मूर्ख हैं, नहीं तो क्या ग्रीक दी हुई चीज़ को फिर वापिस ले जायेंगे?" यह कहकर उसने अपना भाला घोड़े पर जोर से मारा। वह काठ के घोड़े के पेट में घुस गया। उसी समय



अन्दर से आवाज़ आई, जिससे साफ मालूम होता था कि भाला जाकर किसी हथियार से लगा था।

चारों ओर जमा हुए लोग एक साथ चिल्लाये-"इसे जला दीजिये, नहीं तो किले की दीवार से उठाकर फेंक दीजिये।"

परन्तु वर्धन की तरफ के लोग लगातार कह रहे थे कि काठ के घोड़े का कुछ न किया जाये।

अभी..... इस बात पर तर्जन भर्जन हो ही रहा था कि दो ट्रोजन सैनिक एक ग्रीक कैदी को जञ्जीरों से बाँधकर वहाँ

लाये। वह चौर्यनाथ था। चौर्यनाथ से ट्रोजनों ने तरह तरह के प्रश्न पूछे। उसने रूपधर से पाठ सीखा था। इसलिए ट्रोजनों को विश्वास कराने के लिए, उनसे उसने यों कहा

"प्रबोध की हत्या का रहस्य मैं जानता हूँ। क्योंकि में उसका रहस्य जानता हूँ, इसलिए रूपधर को मुझ पर इतना गुस्सा है। ग्रीक तो पहले ही युद्ध से ऊब गये हैं। अगर हवा ठीक रही तो वे बहुत पहले चले भी गये होंगे। जब वे ट्रोय नगर का घेरा डालने आ रहे थे तब भी वायु अनुकूल न थी, ग्रीकों ने बलि देकर वायु देवता को मनाया। इस बार रूपधर ने कांशुक को खींचकर पूछा-"बताओ, किसकी बलि दी जाय?"

कांशुक ने दस दिन का समय माँगा। मेरा विश्वास है कि इस बीच रूपधर ने कांशुक को घूँस दे दी होगी। दस दिन बाद कांशुक ने भरी सभा में मेरी ओर सङ्केत किया। मुझे जञ्जीरों से बाँध दिया गया। परन्तु सौभाग्यवश मुझे बलि देने से पहले ही हवा ठीक चलने लगी। तुरन्त सब मेरी बात भूल गये, और यात्रा



की तैयारी करने लगे। मैं मौका पाकर भाग आया।"

वर्धन ने चौर्यनाथ की हर बात पर विश्वास किया। "मगर इस घोड़े के बारे में तुम क्या कहते हो?"

"यह बात सच है कि बुद्धिमति का हम पर विशेष अनुग्रह है। परन्तु जब रूपधर और देवमय उसको आपके नगर से उठाकर ले गये तो उसको हम पर गुस्सा आ गया। मूर्ति हमारी छावनी में आई ही थी कि उसमें से तीन बार ज्वालायें निकलीं। मूर्ति के पैर पसीने से तर हो गये। साफ़ था कि मूर्ति क्रुद्ध थी। कुशांक ने राजा को यह देखकर सलाह दी कि इस बार यह युद्ध काफी है। बुद्धिमति देवी को कोई भेंट देकर तुरन्त वापिस जाने में ही भला है। अच्छा मुहूर्त देखकर फिर आक्रमण किया जा सकता है।" चौर्यनाथ ने बताया।

"इतना बड़ा घोड़ा क्यों तैयार किया गया?" वर्धन ने पूछा।

"ग्रीक यह चाहते थे कि आप इसे नगर में न ले जायें। अगर आप इस घोड़े को यों ही छोड़ देते तो बुद्धिमति देवी को



आप पर गुस्सा आता। अगर आप मेहनत करके इसे अन्दर ले जाते तो आपकी पराजय न होती। आपका साम्राज्य बड़ा होता, यह सब न हो, इसलिये ग्रीक लोगों ने इतना बड़ा घोड़ा तैयार किया था।" चौर्यनाथ ने कहा।

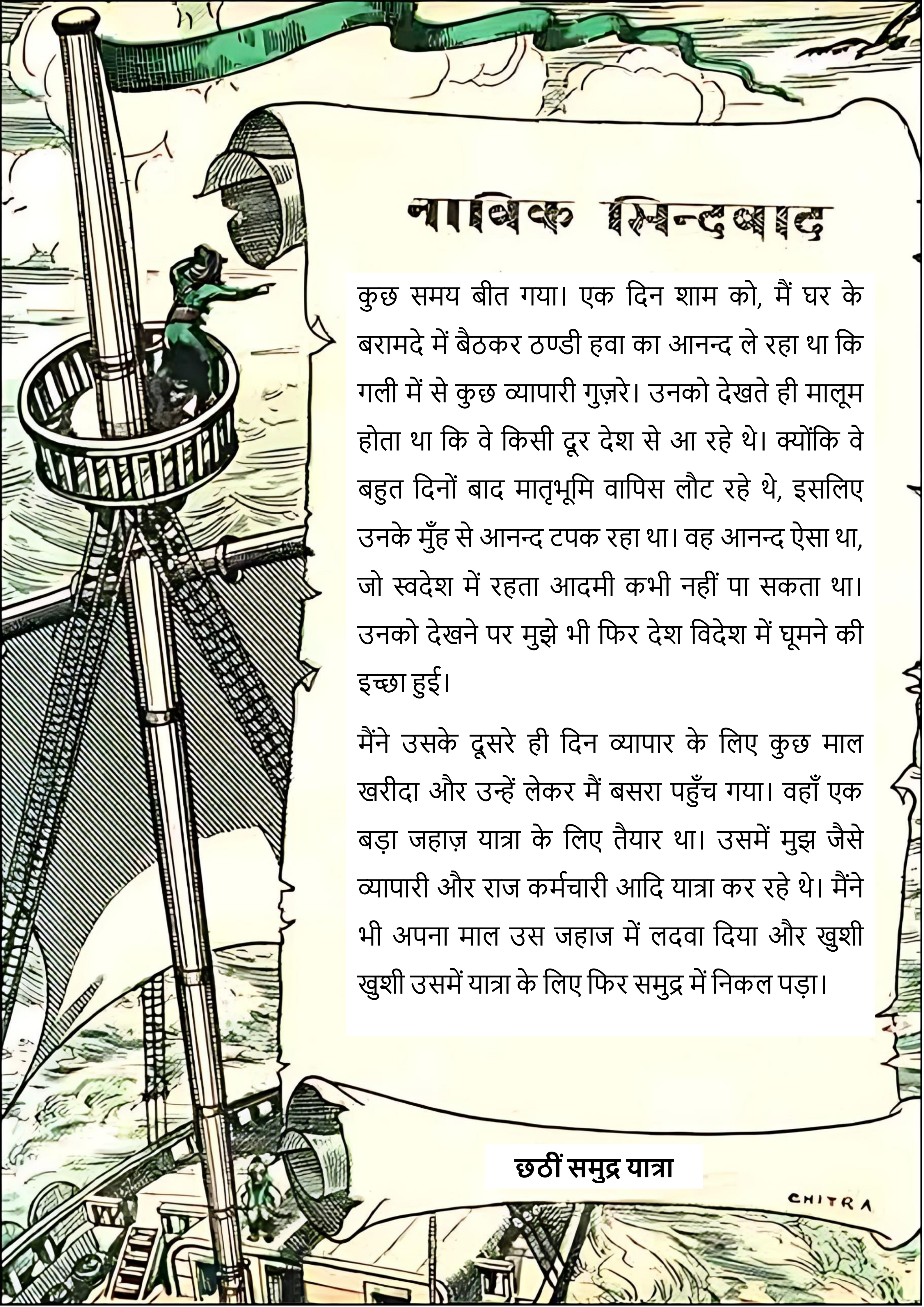
"झूठ, सरासर झूठ। रूपधर की कोरी कल्पनाएँ हैं ये वर्धन! तुम इन बातों का विश्वास कर न बिगड़ो।" इस प्रकार तीक्ष्णदृष्टि चिल्लाया। उसने यह भी कहा-"मैं अभी जाकर अपने आराध्य देवता को बलि दूँगा। और इस काठ के घोड़े को भस्म करने का उपाय जानूँगा।"

परन्तु तीक्ष्णदृष्टि यह कार्य न कर सका। वह ट्रोय नगर की रक्षा भी न कर सका। क्योंकि, जब वह घर पहुँचा तो कहीं से दो बड़े साँप आये और तीक्ष्णदृष्टि के दोनों लड़कों को मार गये। बच्चों की रक्षा के लिए वह लपका। और वह भी उनके काटने से मारा गया।

यह अपशकुन देखकर ट्रोजनों को चौर्यनाथ की बातों पर पूरा विश्वास हो गया। वर्धन ने सोचा, क्योंकि तीक्ष्णदृष्टि ने काठ के घोड़े पर भाला फेंक कर पाप किया था, इसलिए उसकी यह हालत हुयी। उसने विधि पूर्वक, काठ के घोड़े को बुद्धिमति देवी को समर्पित किया। ट्रोजन युवतियों ने नदी के किनारे से फूल लाकर उस पर चढ़ाये। उसके पैरों के चारों ओर भी रखे। इसी समय ट्रोजन विजयोत्सव मनाने के लिए भी तैयारियाँ करने लगे। केवल प्रशंस घबरा गया, और वह अपनी सेनाओं को लेकर ईडा पर्वत की और चला गया।

(आगामी अङ्क में समाप्त)





नाविक सिन्दबाद

कुछ समय बीत गया। एक दिन शाम को, मैं घर के बरामदे में बैठकर ठण्डी हवा का आनन्द ले रहा था कि गली में से कुछ व्यापारी गुज़रे। उनको देखते ही मालूम होता था कि वे किसी दूर देश से आ रहे थे। क्योंकि वे बहुत दिनों बाद मातृभूमि वापिस लौट रहे थे, इसलिए उनके मुँह से आनन्द टपक रहा था। वह आनन्द ऐसा था, जो स्वदेश में रहता आदमी कभी नहीं पा सकता था। उनको देखने पर मुझे भी फिर देश विदेश में घूमने की इच्छा हुई।

मैंने उसके दूसरे ही दिन व्यापार के लिए कुछ माल खरीदा और उन्हें लेकर मैं बसरा पहुँच गया। वहाँ एक बड़ा जहाज़ यात्रा के लिए तैयार था। उसमें मुझ जैसे व्यापारी और राज कर्मचारी आदि यात्रा कर रहे थे। मैंने भी अपना माल उस जहाज में लदवा दिया और खुशी खुशी उसमें यात्रा के लिए फिर समुद्र में निकल पड़ा।

छठीं समुद्र यात्रा

नई नई चीजें देखते, माल खरीदते, और उस माल को बेचते, एक देश से, दूसरे देश को और एक नगर से दूसरे नगर को हम लगातार चलते जा रहे थे। एक दिन जहाज पर हम आराम कर रहे थे कि कप्तान जोर जोर से चिल्लाने लगा। पगड़ी नीचे फेंककर पागल की तरह अपना मुँह और दाढ़ी नोंचने लगा।

हम सबने उसको चारों ओर से घेरकर पूछा-"क्या बात है, क्या बात है? कुछ बोलो तो सही!" कप्तान ने कहा-"भाइयों! गजब हो गया है। हम रास्ते से भटक गये हैं। ऐसे समुद्र में आ गये हैं, जहाँ हम रास्ता नहीं जानते हैं। अब अल्लाह ही हमारा मालिक है। सब अल्लाह की प्रार्थना करो। अब कोई दूसरा उपाय नहीं है।"

कह कहकर, पाल ठीक करने के लिए वह मस्तूल पर चढ़ा। इस बीच तेज़ हवा चलने लगी। उसकी चोट से पतवार टूट गयी। मस्तूल से उतर कर कप्तान ने कहा-"अल्लाह से बढ़कर कोई नहीं है। होने वाले को कोई नहीं रोक सकता। भाइयो! अब हमारा हिसाब पूरा हो गया है। मौत हमें निगलने जा रही है।"



यात्री चिल्लाने लगे। एक दूसरे को विदा देने लगे। इतने में तूफान में, जहाज़ एक पहाड़ से टकराया और पापड़ हो गया। कुछ यात्री पानी में डूब गये। कुछ लोग तैरते रहे और कुछ पानी में पत्थरों पर जा चढ़े।

वह पर्वत समुद्र में काफी दूर तक चला गया था। वह किसी द्वीप का अङ्ग था। किनारे पर टूटे हुए जहाजों के टुकड़े पड़े हुए थे। सामान बिखरा पड़ा था। उस सामान में कीमती मोती गहने वगैरह भी थे। हम उनमें से होते हुए किनारे पर पहुँचे।



मैं जैसे-तैसे एक पहाड़ी नाले के पास पहुँच गया। वह नाला, एक पहाड़ से निकलकर थोड़ी दूर बहकर एक गुफा में चला गया था। उस नाले के दोनों किनारों पर मोती, सोना, चान्दी आदि, जड़े हुए थे। नाले में भी, पत्थरों की जगह क़ीमती रत्न चमक रहे थे। उस सामान में जो धन-सम्पदा बिखरी पड़ी थी, वैसी किसी मनुष्य ने कहीं भी न देखी होगी। उस दृश्य को देखकर आँखें चौंधिया गई। नदी के किनारे पेड़ थे।

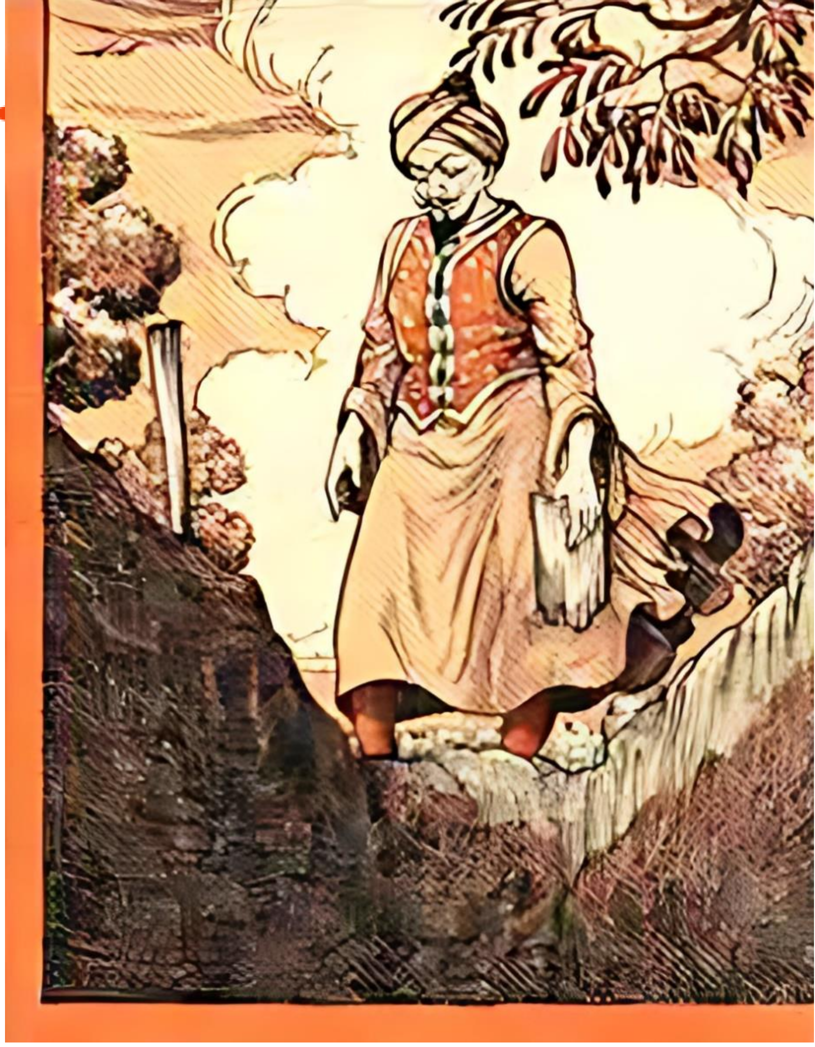
यही नहीं इस द्वीप में एक और नाला था। वह पानी का नाला न था। गरमी के कारण कोई काली चीज़ पहाड़ों से पिघलकर नाले के रूप में समुद्र की ओर बह रही थी। समुद्र की मछलियाँ उस द्रव को पी रही थीं। थोड़ी देर बाद, वह द्रव, मछलियाँ फिर उल्टी कर देती थीं। वह फिर ऊपर तैर आता, उसका रङ्ग बदल जाता। वह पथरा जाता और मणि होकर किनारे पर लग जाता। उस प्रवाह के कारण और उन मणियों के कारण सारा द्वीप चमक रहा था।

इतनी सम्पत्ति यहाँ थी, पर किसी मनुष्य की वहाँ रहने की किस्मत न थी। क्योंकि जो कोई जहाज़ वहाँ लगता, टूटकर रहता, फिर वापिस न जा पाता। यद्यपि हम जिन्दे इस द्वीप में पहुँचे थे, पर इतनी बड़ी धनराशि के बीच में भी हम दरिद्र थे। इतना धन था कि कितनी ही दावतें दी जा सकती थीं, पर हम भूख के कारण तड़प रहे थे। उसका वहाँ कोई मूल्य ही नहीं था। जो थोड़ा बहुत खाने के लिए हमारे पास था, हमने बड़ी ईमानदारी से आपस में बाँट लिया। मेरे साथ के लोगों को उपवास करने की आदत न थी, उनकी जिन्दगी में ऐसा मौका कभी नहीं आया

था; इसलिए जो कुछ भोजन था, वह दो चार बार खाकर पूरा का पूरा ख़तम कर दिया। और फिर भूखों मरने लगे। मैं बहुत थोड़ा खाता। वह भी दिन में एक ही बार। वैसे तो मुझे उपवास की आदत थी ही।

जो मर गये थे, हमने उन्हें समुद्र के किनारे गाड़ दिया। शवों के कफन के लिए वहाँ कितना ही कपड़ा था। इन सब दिक्कतों के साथ समुद्र से हवा का एक झोंका आया। हम सब बीमार हो गये। सिवाय मेरे, जो मरने से बच गये थे और मेरे साथ जीवन गुज़ार रहे थे, वे सब इस रोग से मर गये। आखिर मृत व्यक्तियों को वहाँ गाड़कर उस द्वीप में मैं अकेला ही रह गया।

चाहे कितना ही कम खाओ, मेरी रसद भी ख़तम होने को आई। "अगर मैं अब मर गया तो शव को नहला धुला कर, दफनाने वाला भी कोई न था। मैं पहले क्यों न मर गया था?" मैं यह सोच दुखी होने लगा। मैंने अपने लिए एक गढ़ा भी खोदकर तैयार कर लिया।



जब मौत आयेगी तो मैं गढ़े में कूद जाऊँगा। हवा ही मुझे दाब देगी। नहीं तो यह काम करने के लिए अब वहाँ है ही कौन? यह सोचकर ही मैंने वह गढ़ा खोदा था। मेरे वैराग्य ऐसा वैसा न था। "अरे सिन्दबाद! पाँच बार मौत के मुँह से निकले हो, तब भी अक्ल नहीं आई। राख में सोता हुआ कुत्ता भी तो एक जगह नहीं पड़ा रहता। क्यों तुम में रुपये-पैसे के लिए इतना लालच है? जो कुछ तेरे पास है, खूब खर्चने पर भी तीन पीढ़ियों के लिए काफ़ी है।" मैंने यह सोच सोचकर अपने को ही खूब डाँटा-डपटा।

परन्तु इस पश्चात्ताप के साथ ही मुझे एक बात सूझी। वह नाला जो गुफा से गया है, कहाँ जाता है? वह ज़रूर पहाड़ के उस तरफ गया होगा। पहाड़ के पार क्या है? यहाँ इस बुरी मौत मरने के बदले यह जाना जा सकता है कि नाला कहाँ जाता है, और वहाँ क्या है? भले ही इसमें मौत आ जाये।

यह सोचकर, मुझ में कुछ हिम्मत आई। मैंने बड़ी बड़ी टहनियाँ ली और उनको मिलाकर एक तमेड़ बना ली। उसके ऊपर जहाज के टुकड़े रख दिये। मणि चुन चुनकर मैंने तमेड़ पर रख लीं। मेरे पास जो कुछ खाना था, वह भी उस पर रख दिया। दो टहनियों को चप्पू की तरह चलाता, मैं नाले में निकल पड़ा।

मेरी तमेड़ जाती जाती, नाले के साथ गुफा में घुसी। अन्दर घना अन्धेरा था। नाला जिस जिस तरफ मुड़ता तमेड़ भी मुड़ती। तमेड़ कहीं कहीं पत्थरों से टकराती। मेरा सिर भी गुफ़ा की छत से टकराता। अगर बचने की भी कोशिश करता, तो वहाँ इतना अन्धेरा था कि हाथ को हाथ भी न देखता था।

"मैं इस अन्धेरे गढ़े में आया ही क्यों? इससे अच्छा तो यह था कि उस रेत पर ही मर जाता। है भगवान!" मैंने सोचा, पर बापिस जाने का कोई रास्ता न था। नाला ज्यों ज्यों नीचे उतरता जाता, उसकी धार भी तेज़ होती जाती थी। मेरे चप्पू किसी काम के न रहे। इसलिए मैंने उन्हें छोड़ दिया और तमेड़ पर पेट के बल लेट गया, नहीं तो मेरा सिर टूट जाता। मैं फिर ऐसा सो गया जैसे बेहोश हो गया हूँ।

(अभी और है)



CHANDAMAMA (Hindi)   JUNE 1957   Regd. No. M. 5462

